। नमः श्रीपार्श्वनाथाय ।

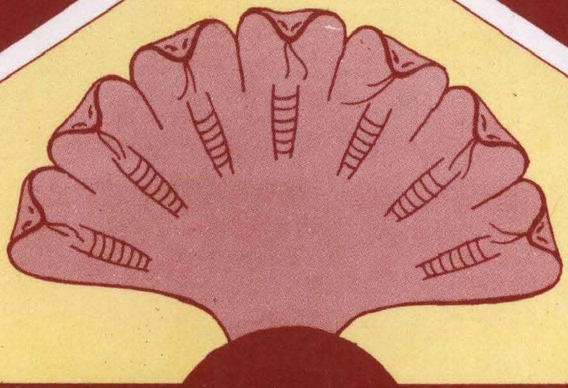

कविवर भूधरदास विरचित

॥ पार्श्वपुराण ॥

(जैन सिद्धान्त गर्भित सुन्दर काव्य ग्रन्थ ।)

संपादक :

पं. नाथूराम प्रेमी

सन्मति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमः श्री पार्श्वनाथाय ।

कविवर भूधरदास-विरचित

॥ पार्श्वपुराण ॥

जैन सिद्धांत-गर्भित काव्य-ग्रन्थ

★ संपादक ★

पं. नाथूराम प्रेमी

★ कथासार ★

पं. कमलकुमार शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य
(टीकमगढ़, म.प्र.)

★ प्रस्तुति ★

देवेन्द्र जैन

★ प्रकाशक ★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❒ महाकवि भूधरदास-विरचित
पार्श्वपुराण

❒ **प्रकाशक :**
सन्मति ट्रस्ट
नरेन्द्र सदन, ४ माला, ३६ डी, मुगभाट क्रास लेन, ठाकुरद्वार,
मुंबई - ४००००४.

❒ **अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोध संस्थान,** बीना के
सदस्यों के लिए विशेष

❒ **पुस्तक प्राप्तिस्थान :**

१. अनेकांत ज्ञानमंदिर शोध संस्थान
अनेकांत नगर, बीना (सागर) म.प्र. - ४७०११३.

२. सिंघई श्री कुन्दनलाल जैन
विजय मेडिको, सिविल अस्पताल के सामने, टीकमगढ़ (म.प्र.)

३. जैन साहित्य केन्द्र, पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर (म.प्र.)

❒ **लागत मूल्य :** ३०/-
बिक्री मूल्य : १०/-

❒ **आवरण शिल्पी :** सुरेश म्हात्रे, मुंबई
लेजर टाइप सेटिंग :
नवीन उपाध्याय - मिडीयन आर्ट्स, मुंबई. दूरध्वनि - २०६०७८६

❒ **मुद्रक :**
दीप्ति इंटरप्राइजेस
सन्मति कुटीर, १३८ सी, बावड़ी चाल, चन्दावाड़ी,
सी.पी.टैंक., मुंबई - ४०० ००४.

❒ **प्रकाशन तिथि** : ३१ जुलाई २००१

❒ **प्रति १०००**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत संस्करण

ज्ञानावतार सत्पुरुष परम कृपावंत श्रीमद् राजचन्द्र के परम समाधि शताब्दि महोत्सव के निमित्त अप्रैल २००१ में अगास जाने का अवसर मिला । आठ दिन का यह आयोजन अपने आप में भव्य था । वहीं पर पूर्व परिचित पंडित मुमुक्षु श्री बाबूलालजी जैन गोयलीय से हमेशा धर्मचर्चा होती रहती थी । उन्होंने एक गुरुभार मुझे सौंपा कि पंडितप्रवर कविवर भूधरदास-रचित पार्श्वपुराण का प्रकाशन करना है । पुस्तक देखने पर ज्ञात हुआ कि इसका प्रकाशन हिन्दी एवं जैन साहित्य के आद्य प्रकाशक - संपादक पं.नाथूरामजी प्रेमी (मेरे ताऊजी) ने लगभग ८० साल पहले किया है । पार्श्वपुराण जैन सिद्धान्त से ओतप्रोत सरल व्रजभाषा में सुन्दर काव्य ग्रंथ है । इसे प्रकाशित करने का मन बनाया ।

आज के अंग्रेजीदां युग में घर में हिन्दी बोलनेवाले बालक तो मिल जायेंगे किन्तु पढ़ने-समझनेवाले नहीं । इसलिए सोचा कि प्रस्तुत ग्रंथ का कथासार अंत में दे दिया जाय तो ग्रंथ समझने में थोड़ी सी सुविधा होगी । यह गुरुभार मैंने आदरणीय पंडित श्री कमलकुमारजी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य, टीकमगढ़वासी को सौंपा । उन्होंने तुरन्त ही यह कार्य सम्पन्न कर भेज दिया । कृतज्ञ हुआ ।

पं.भूधरदासजी पर आ. प्रेमीजी ने कुछ विशेष सामग्री नहीं दी थी । भगवान महावीर के २५००वे निर्वाण-महोत्सव पर प्रकाशित-'भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'-(लेखक : डॉ.नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य) के चौथे भाग में पं.भूधरदासजी पर अच्छी विस्तृत जानकारी दी है । उसे यथावत् यहाँ साभार ले रहे हैं ।

पुस्तक प्रकाशन में श्री नारणभाई मंगलभाई देसाई, नडियाद, श्री शांतिलाल एम. महेता, मुंबई, सौ.कीर्ति दीपक जैन, चैन्नई, सुश्री सरोजिनी सुरेन्द्रनाथ जैन, मुंबई तथा आदरणीया बहन (बम्बईवाली) श्रीमती सुप्रभा कुन्दनलाल जैन सिंघई, टीकमगढ़ ने आर्थिक सहयोग देकर जिनवाणी के प्रचार में महत् कार्य किया है । ये सभी साधुवाद के पात्र हैं ।

सद्यः स्थापित सन्मति ट्रस्ट का यह प्रथम सोपान है । ट्रस्ट की संस्थापिका और मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सुधा जैन की सत्प्रेरणा का ही यह सुफल है कि यह ग्रंथ पुनः प्रकाशित हो सका है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अंत में अनेकांत ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर) के अधिष्ठाता जिनवाणी एवं लुप्तप्राय हस्तलिखित ग्रंथो के संरक्षण के प्रति सजग क्रांति के पुरोधा ब्र.संदीप जैन 'सरल' का हृदय से आभारी हूँ कि समय समय पर अपने सरल विचारों से सहयोग देते रहे हैं। भविष्य में भी देंगे। बहुत सावधानी से प्रूफ पढ़ने के बाद भी संभवतः कुछ अशुद्धियां रहीं हों तो उसे सुधीजन सुधार कर पढ़ेंगे तथा हमें सूचित कर देंगे जिससे यथासमय आगामी आवृत्ति में संशोधन कर लिया जाय।

सत्पुरुषों के योगबल से जगत का कल्याण हो।

इसी भावना के साथ,

गुरुपूर्णिमा

५ जुलाई २००१

- देवेन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थकर्त्ताका परिचय।
(पूर्व संस्करण से)

पार्श्वपुराणके रचयिता कविवर भूधरदासजी आगरे के रहनेवाले खण्डेलवाल जैन थे। संवत् १७८९ में आपने इस ग्रन्थको समाप्त किया है। इसके पहले आप संवत् १७८१ में जैनशतक बना चुके थे। जैनशतकमें १०७ कवित्त, सवैया, दोहा और छप्पय हैं। इसका प्रत्येक पद्य अपने अपने विषयको स्वतंत्र रूपसे कहनेवाला है। इसे एक प्रकारका सुभाषित-संग्रह कहना चाहिए। बहुत ही सुन्दर रचना है। जैन समाजमें इसका अच्छा प्रचार है। जैन शतकके सिवाय आपका एक ग्रन्थ पदसंग्रह है जिसमें लगभग ८० पद और स्तुतियाँ आदि हैं। जान पड़ता है, यह आपकी जुदा जुदा समयकी रचनाओंका संग्रह है जो किसीने पीछेसे कर दिया है। इसमें के कोई कोई पद बड़े ही हृदयग्राही और प्रभावशाली हैं। वे आपके एक अच्छे कवि होनेकी साक्षी देते हैं।

हिन्दीके जैन साहित्यमें पार्श्वपुराण ही एक ऐसा चरितग्रन्थ है, जिसकी रचना उच्चश्रेणीकी है, जो वास्तवमें पढ़ने योग्य है और जो किसी संस्कृत प्राकृत ग्रन्थका अनुवाद करके नहीं किन्तु स्वतंत्ररूपसे लिखा गया है।

लगभग १०-११ वर्ष के बाद इस ग्रन्थका यह दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जाता है। अबकी बार इसके संशोधनमें पहलेकी अपेक्षा विशेष परिश्रम किया गया है। इतने पर भी यदि इसमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, तो उनके लिये पाठकगण हमें क्षमा करें।

आषाढ़ १९७५ वि. — **- नाथूराम प्रेमी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि भूधरदास

हिन्दी भाषा के जैन-कवियों में महाकवि भूधरदास का नाम उल्लेखनीय है। कवि आगरा निवासी थे और इनकी जाति खण्डेलवाल थी। इससे अधिक इनका परिचय प्राप्त नहीं होता है। इनकी रचनाओं के अवलोकन से यह अवश्य ज्ञात होता है कि कवि श्रद्धालु और धर्मात्मा थे। कविता करने का अच्छा अभ्यास था। कवि के कुछ मित्र थे, जो कवि से ऐसे सार्वजनीन साहित्यका निर्माण कराना चाहते थे, जिसका अध्ययन कर साधारण जन भी आत्म - साधना और आचार-तत्त्वको प्राप्त कर सके। उन्हीं दिनों आगरामें जयसिंहसवाई सूबा और हाकीम गुलाबचन्द वहाँ आये। शाह हरिसिंहके वंशमें जो धर्मानुरागी मनुष्य थे उनकी बार-बार प्रेरणा से कवि के प्रमादका अन्त हो गया और कवि ने विक्रम सं. १७८१ में पौष कृष्णा त्रयोदशी के दिन अपना 'शतक' नामक ग्रन्थ रचकर समाप्त किया।

कवि के हृदयमें आत्मकल्याण की तरंग उठती थी और विलीन हो जाती थी, पर वह कुछ नहीं कर पाते थे। अध्यात्मगोष्ठी में जाना और चर्चा करना नित्यका काम था। एक-दिन कवि अपने मित्रों के साथ बैठे हुए थे कि वहाँ से एक वृद्ध पुरुष निकला, जिसका शरीर थक चुका था, दृष्टि कमजोर हो गई थी, लाठीके सहारे चला जा रहा था। उसका सारा शरीर काँप रहा था। मुँह से कभी-कभी लार भी टपकती थी। वह लाठी के सहारे स्थिर होकर चलना चाहता था, पर वहाँ से दस-पाँच कदम ही आगे चल पाया था कि संयोग से उसकी लाठी टूट गई। पास में स्थित लोगों ने उसे खड़ा किया और दूसरी लाठी का सहारा देकर, उसे घर पहुँचाया। वृद्धकी इस अवस्था से कवि भूधरदास का मन विचलित हो गया[1] और उनके मुखसे निम्नलिखित पद्य निकल पड़ा -

आया रे बुढ़ापा मानी, सुधि-बुधि बिसरानी ॥
श्रवन की शक्ति घटी, चाल चले अटपटी,
देह लटी भूख घटी, लोचन झरत पानी ॥१॥
दाँतनकी पंक्ति टूटी, हाड़न की सन्धि छूटी,
काया की नगरी लूटी, जात नहिं पहिचानी ॥२॥
बालों ने वरन फेरा, रोग ने शरीर घेरा,
पुत्रहू न आवै नेरा, औरोंकी कहा कहानी ॥३॥

---

१. आगरे मैं बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल, बालकके ख्याल सौं कवित्त कर जानैं है।
ऐसे ही करत भयो जैसिंह सवाई सूबा, हाकिम गुलाबचन्द आये तिहि थाने हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भूधर' समुझि अब, स्वहित करोगे कब ?
यह गति है है जब, तब पछतैहै प्रानी ।।४।।

पदके अन्तिम चरण को कवि ने कई बार पढ़ा और अनुभव किया कि वृद्धावस्था में हम सब की ऐसी ही हालत होती है । अतः आत्मोत्थान की ओर प्रवृत्त होना चाहिए । इस प्रकार कवि भूधरदास का व्यक्तित्व सांसारिकता से परे आत्मोन्मुखी हुआ ।

इनकी रचनाओंसे इनका समय वि. सं. की १८वीं शती (१७८१) सिद्ध होता है ।

रचनाएँ

महाकवि भूधरदासने पार्श्वपुराण, जिनशतक और पद-साहित्य की रचना कर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाया है । इनकी कविता उच्च-कोटि की है ।

१. पार्श्वपुराण - यह एक महाकाव्य है । इसकी कथा बड़ी ही रोचक और आत्मपोषक है । किस प्रकार वैरकी परम्परा प्राणियों के अनके जन्म जन्मान्तरों तक चलती रहती है, यह इसमें बड़ी ही खूबी के साथ बतलाया गया है । पार्श्वनाथ तीर्थंकर होनेके नौ भव पूर्व पोदनपुर नगर के राजा अरविन्दके मन्त्री विश्वभूति के पुत्र थे । उस समय इनका नाम मरुभूति और इनके भाईका नाम कमठ था । विश्वभूति के दीक्षा लेनेके अनन्तर दोनों भाई राजा के मन्त्री हुए और जब राजा अरविन्द ने वज्रकीर्त्ति पर चढ़ाई की, तो कुमार मरुभूति इनके साथ युद्धक्षेत्र गया । कमठ ने राजधानी में अनेक उपद्रव मचाये और अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ दुराचार किया । जब राजा शत्रु को परास्त कर राजधानीमें आया, तो कमठके कुकृत्य की बात सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ । कमठ का काला मुँह कर गदहे पर चढ़ा सारे नगर में घुमाया और नगरकी सीमासे बाहर कर दिया । आत्म-प्रताड़ना से पीड़ित कमठ भूताचल पर्वतपर जाकर तपस्वियों के साथ रहने लगा । मरुभूति कमठ के इस समाचारको प्राप्त कर भूताचल पर गया और वहाँ दुष्ट कमठने उसकी हत्या कर दी । इसके बाद कविने आठ जन्मों की कथा अंकित की है । नवें जन्म में काशी के विश्वसेन राजा के यहाँ पार्श्वनाथ का जन्म होता है । पार्श्व आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आत्मसाधना करते हैं । वे तीर्थंकर बन जाते हैं । कमठका

हरीसिंह शाहके सुवंश धर्मरागी नर, तिनके कहे सौं जोरि कीनी एक ठानैं हैं ।
फिरि-फिरि प्रेरे मेरे आलसको अन्त भयो, उनकी सहाय यह मेरी मन मानै हैं ।
सतरहसै इक्यासिया, पोह पाख तमलीन ।
तिथि तेरस रविवारको, सतक समापत कीन ।।

- जिनशतकप्रशस्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव उनकी तपस्या में विघ्न करता है; पर पार्श्वनाथ अपनी साधना से विचलित नहीं होते। केवलज्ञान प्राप्त होने- पर वे प्राणियों को धर्मोपदेश देते हैं और अन्त में सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त करते हैं।

नायक पार्श्वनाथका जीवन अपने समय के समाज का प्रतिनिधित्व करता हुआ लोक-मंगलकी रक्षा के लिए बद्धपरिकर है। कविने कथा में क्रमबद्धता का पूरा निर्वाह किया है। मानवता और युगभावना का प्राधान्य सर्वत्र है; पर स्थिति-निर्माण में पूर्व के नौ भवोंकी कथा जोड़कर कवि ने पूरी सफलता प्राप्त की है। जीवन का इतना सर्वांगीण और स्वस्थ विवेचन एकाध महाकाव्य में ही मिलेगा। इसमें एक व्यक्तिका जीवन अनेक अवस्थाओं और व्यक्तियों के बीच अंकित हुआ है। अतः इसमें मानवके रागद्वेषों की क्रीड़ा के लिए विस्तृत क्षेत्र है। मनुष्य का ममत्व अपने परिवार के साथ कितना अधिक रहता है, यह पार्श्वनाथ के जीव मरुभूति के चरित्र से स्पष्ट है।

वस्तुव्यापार-वर्णन, घटना-विधान और दृश्य-योजनाओं की दृष्टिसे भी यह काव्य सफल है। कवि जीवन के सत्यको काव्य के माध्यम से व्यक्त करता हुआ कहता है -

बालक - काया कूंपल लोय। पत्ररूप - जोबन में होय ॥
पाको पात जरा तन करै। काल-बयारि चलत पर झरै ॥
मरन-दिवस को नेम न कोय। यातै कछु सुधि परै न लोय ॥
एक नेम यह तो परमान। जन्म धरै सो मरै निदान ॥४॥ ६५-६७

अर्थात् किशोरावस्था कोंपलके तुल्य है। इसमें पत्रस्वरूप यौवन अवस्था है। पत्तों का पक जाना जरा है। मृत्युरूपी वायु इस पके पत्ते को अपने एक हल्के धक्के से ही गिरा देती है। जब जीवन में मृत्यु निश्चित है तो हमें अपनी महायात्राके लिए पहलेसे तैयारी करनी चाहिए।

जीवन का अर्न्तदर्शन ज्ञान-दीपके द्वारा ही संभव है, पर इस ज्ञान-दीप में तपरूपी तैल और स्वात्मानुभवरूपी बत्ती का रहना अनिवार्य है।

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर ॥४॥

कविने इस काव्यकी समाप्ति वि. सं. १७८९ आषाढ़ शुक्ला पंचमी को की है।[1]

---

१. संवत् सतरह शतकमैं, और नवासी लीय।
सुदि अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रन्थ समापत कीय॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **जैन शतक** - इस रचनामें १०७ कवित्त, दोहे, सवैये और छप्पय है। कविने वैराग्य-जीवन के विकास के लिए इस रचनाका प्रणयन किया है। वृद्धावस्था, संसार की असारता, काल सामर्थ्य, स्वार्थपरता, दिगम्बर मुनियोंकी तपस्या, आशा-तृष्णा की नग्नता आदि विषयों का निरूपण बड़े ही अद्भुत ढंग से किया है। कवि जिस तथ्यका प्रतिपादन करना चाहता है उसे स्पष्ट और निर्भय होकर प्रतिपादित करता है। नीरस और गूढ़ विषयों का निरूपण भी सरस एवं प्रभावोत्पादक शैली में किया गया है। कल्पना, भावना और विचारों का समन्वय सन्तुलित रूपमें हुआ है। आत्म-सौन्दर्यका दर्शन कर कवि कहता है कि संसार के भोगों में लिप्त प्राणी अहर्निश विचार करता रहता है कि जिस प्रकार भी संभव हो उस प्रकार मैं धन एकत्र कर आनन्द भोगूँ। मानव नाना प्रकार के सुनहले स्वप्न देखता है और विचारता है कि धन प्राप्त होने पर संसार के समस्त अभ्युदयजन्य कार्योंको सम्पन्न करूँगा, पर उसकी धनार्जनकी यह अभिलाषा मृत्यु के कारण अधूरी ही रह जाती है। यथा-

चाहत है धन होय किसी विध, तो सब काज करे जिय राजी।
गेह चिनाय करूँ गहना कछु, ब्याहि सुता सुत बाँटिय भाजी।।
चिन्तत यों दिन जाहिं चले, जम आनि अचानक देत दगाजी।
खेलत खेल खिलारि गये, रहि जाइ रूपी शतरंजकी बाजी।।

इस संसार में मनुष्य आत्मज्ञान से विमुख होकर शरीर की सेवा करता है। शरीर को स्वच्छ करने में अनेक साबुन की बट्टियाँ रगड़ डालता है और अनेक तेलकी शीशियाँ खाली कर डालता है। फैशन के अनेक पदार्थों का उपयोग शारीरिक सौन्दर्य-प्रसाधन में करता है, प्रतिदिन रगड़-रगड़ कर शरीर को साफ करता है। इत्र और सेण्टोंका व्यवहार करता है। प्रत्येक इन्द्रिय की तृप्तिके लिए अनेक पदार्थों का संचय करता है। इस प्रकार से मानव की दृष्टि अनात्मिक हो रही है। वह शरीर को ही सब कुछ समझ गया। कवि भूधरदास ने अपने अन्तस् में उसी सत्यका अनुभव कर जगतके मानवों को सजग करते हुए कहा है-

मात-पिता-रज-बीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है।
माखिनके पर माफिक बाहर, चामके बेठन बेढ़ धरी है।।
नाहिं तो आय लगें अबहीं, बक वायस जीव बचै न घरी है।
देह-दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है।।

इस प्रकार कविने इस शतक में अनात्मिक दृष्टि को दूर कर आत्मिक दृष्टि स्थापित करने का प्रयास किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. पद साहित्य - महाकवि भूधरदास की तीसरी रचना पद-संग्रह है । इनके पदों को - १ स्तुतिपरक, २. जीव के अज्ञानावस्था के कारण परिणाम और विस्तारसूचक, ३. आराध्य की शरण के दृढ़ विश्वाससूचक, ४. अध्यात्मोपदेशी, ५. संसार और शरीर से विरक्ति उत्पादक, ६. नाम स्मरण के महत्त्व द्योतक और ७. मनुष्यत्वके पूर्ण अभिव्यञ्जक इन सात वर्गों में विभक्त किया जा सकता है । इन सभी प्रकार के पदों में शाब्दिक कोमलता, भावों की मादकता और कल्पनाओं का इन्द्रजाल समन्वित रूप में विद्यमान है । इनके पदों में राग-विराग का गंगा-यमुनी संगम होने पर भी श्रृंगारिकता नहीं है । कई पद सूरदास के पदों के समान दृष्टिकूट भी हैं । "जगत्-जन जुआ हार चले" पद में भाषा की लाक्षणिकता और काव्योक्तियों की विदग्धता पूर्णतया समाविष्ट है । "सुनि ठगनी माया । तें सब जग ठग खाया" पद कबीर के "माया महा ठगनी हम जानी" पदसे समकक्षता रखता है । इसी प्रकार "भगवन्त भजन क्यों भूला रे । यह संसार रेनका सुपना, तन धन वारि बबूला रे" यह पद "भजु मन जीवन नाम सबेरा" कबीर के पद के समकक्ष है । "चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना" आदि आध्यात्मिक पद कबीर के "चरखा चलै सुरत विरहिनका" पदके तुल्य है । इस प्रकार भूधरदास के पद जीवन में आस्था, विश्वास की भावना जागृत करते हैं ।

डॉ.नेमिचंद्र ज्योतिषाचार्य

(भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भाग ४ से साभार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

१)	श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति	१२
२)	पहला अधिकार मरुभूतिभव वर्णन ।	१७
३)	दूसरा अधिकार गज स्वर्ग गमन विद्याधर भव विद्युत्प्रभदेव भव वर्णन ।	२५
४)	तीसरा अधिकार वज्रनाभ अहमिन्द्र सुख भिल्ल नरक दुःख वर्णन ।	३३
५)	चौथा अधिकार आनन्दराय इन्द्रपद प्राप्ति वर्णन ।	५३
६)	पाँचवा अधिकार गर्भावतारवर्णनं ।	७६
७)	छठा अधिकार श्री जिनेन्द्र जन्मोत्सव वर्णन ।	९२
८)	सातवाँ अधिकार भगवत् वैराग्य प्राप्त दीक्षा कल्याणक वर्णन ।	१०३
९)	आठवाँ अधिकार ज्ञान कल्याणक वर्णन ।	११६
१०)	नौवाँ अधिकार भगवान निर्वाण गमन वर्णन ।	१३२
११)	पार्श्वपुराण-ग्रन्थ का सार	१६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ

कविवर भूधरदासजी विरचित-

।। पार्श्वपुराण ।।

श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति

दोहा ।

मोह महातम दलन दिन, तपलछमीभरतार ।।
ते पारस परमेस मुझ, होहु सुमतिदातार ।।१।।

वामानंदन-कलपतरु, जयो जगतहितकार ।।
मुनिजन जाकी आस करि, जाचैं सिवफल सार ।।२।।

छप्पय ।

भुवनतिलक भगवंत, संतजन-कमल-दिवायर ।
जगतजंतु-बंधव अनंत, अनुपम गुणसायर ।।
राग-नाग-मयमंत,-दंत-उच्छेपन बलि अति ।
रमाकंत अरहंत, अतुल जसवंत जगतपति ।।
महिमा महंत मुनिजन जपत, आदि अंत सबको सरन ।
सो परमदेव मुझ मन बसो, पार्सनाह मंगलकरन ।।३।।

विमलबोधदातार, विश्व-विद्या-परमेसर ।
लछमीकमलकुमार, मार-मातंग-मृगेसर ।।
मुखमयंक अवलोकि, रंक रजनीपति लाजै ।
नाममंत्रपरताप, पाप पन्नग डरि भाजै ।।
जय अस्वसेन-कुल-चंद्र जिन, सक्र-चक्र-पूजित-चरन ।
तारो अपार भवजलधितैं, तुम तरंड तारन-तरन ।।४।।

बाघ सिंह बस होहिं, विषम विषधर नहिं डंकैं ।
भूत प्रेत बेताल, ब्याल बैरी मन संकैं ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साकिनि डाकिनि अगनि, चोर नहिं भय उपजावैं ।
रोग सोग सब जाहिं, विपत नेरे नहिं आवैं ।।
श्रीपार्सदेवके पदकमल, हियैं धरत निज एकमन ।
छूटैं अनादि बंधन बँधे, कौन कथा विनसैं विघन ।।५।।

चहुंगति भ्रमत अनादि, वादि बहुकाल गमायौ ।
रही सदा सुख-आस,-प्यास, जल कहूं न पायौ ।।
सुखकरता जिनरांज, आज लौं हियैं न आये ।
अब मुझ माथे भाग, चरन-चिंतामनि पाये ।।
राखौं संभाल उर कोषमैं, नहिं बिसरौं पल रंक-धन ।
परमादचोर टालन निमित, करौं पार्सजिनगुनकथन ।।६।।

चौपाई (१५ मात्रा) ।

बंदौं तीर्थंकर चौबीस । बंदौं सिद्ध बसैं जगसीस ।।
बंदौं आचारज उवझाय । बंदौं परम साधुके पाय ।।७।।

ये ही पद पांचौं परमेठ । ये ही सांच और सब हेठ ।।
ये ही मंगल पूज्य अतीव । ये ही उत्तम सरन सदीव ।।८।।

बंदौं जिनवानी मन सोध । आदि अंत जो विगत-विरोध ।।
सकलवस्तुदरसावनहार । भ्रमविषहरन ओषधी सार ।।९।।

दोहा ।

बरतो जग जयवंत नित, जिनप्रवचन अमलान ।।
लोक-महलमैं जगमगै, मानिक-दीप समान ।।१०।।

हरो भरम दारिद्र दुख, भरो हमारी आस ।।
करो सारदा लच्छमी, मुझ उरअंबुज बास ।।११।।

चौपाई ।

बंदौं वृषभसेन गनराज । गुरु गौतम भवजलधिजहाज ।।
कुंदकुंद-मुनि-प्रमुख सुपंथ । जे सब आचारज निरग्रंथ ।।१२।।

जैनतत्त्वके जाननहार । भये जथारथ कथक उदार ।।
तिनके चरनकमल कर जोरि । करौं प्रनाम मान-मद छोरि ।।१३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

सकलपूज्य-पद पूजकै, अलपबुद्धिअनुसार ।।
भाषा पार्सपुरानकी, करौं स्वपरहितकार ।।१४।।

चौपाई ।

जिनगुनकथन अगमविस्तार । बुधिबल कौन लहे कवि पार ।।
जिनसेनादिक सूरि महँत । वरनन करि पायो नहिं अंत ।।१५।।

तो अब अलपमती जन और । कौन गिनतिमैं तिनकी दौर ।।
जौ बहुभार गयंद न बहे । सो क्यों दीन ससक निरबहे ।।१६।।

दोहा ।

कह जानैं ते यों कहैं, हम कछु वरन्यौ नाहिं ।।
जे कह जानैं ही नहीं, ते अब कहा कहाहिं ।।१७।।

नभ बिलस्त नापै नहीं, चुलू न सागर-तोय ।।
श्रीजिनगुनसंख्या सुजस, त्यों कवि करै न कोय ।।१८।।

चौपाई ।

पै यह उत्तम नर अवतार । जिनचरचा बिन अफल असार ।।
सुनि पुरान जो घुमैं न सीस । सो थोथे नारेल सरीस ।।१९।।

जिनचरित्र जे सुनैं न कान । देहगेहके छिद्र समान ।।
जामुख जैनकथा नहिं होय । जीभ भुजंगनिकौ बिल सोय ।।२०।।

या प्रकार यह उद्यम जोग । कहत पुरानन पंडित लोग ।।
जिनगुनगान सुधारसन्याय । सेवत अलप जनम-जुर जाय ।।२१।।

घनाक्षरी ।

जौ लौं कवि काव्यहेत आगमके अच्छरकौ,
अरथ विचारै तौलौं सिद्धि सुभध्यानकी ।
और वह पाठ जब भूपर प्रगट होय,
पढ़ैं सुनैं जीव तिन्हैं प्रापति ह्वै ग्यानकी ।।
ऐसैं निज-परकौ विचार हित हेतु हम,
उद्यम कियौ है नहिं बान अभिमानकी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यानअंस चाखा भई ऐसी अभिलाखा अब,
करूं जोरि भाखा जिनपारसपुरानकी ।।२२।।

आगैं जैनग्रंथनिके करता कवींद्र भये,
करी देवभाषा महाबुद्धिफल लीनों है ।
अच्छरमिताई तथा अर्थकी गभीरताई,
पदललिताई जहां आई रीति तीनों है ।।
कालके प्रभाव तिन ग्रंथनिके पाठी अब,
दीसत अलप ऐसो, आयौ दिन हीनों है ।
तातैं इह समै जोग पढ़ैं बालबुद्धि लोग,
पारसपुरानपाठ भाषाबद्ध कीनों है ।।२३।।

दोहा ।

सक्तिभक्तिबल कविनपै, जिनगुन बरनैं जाहिं ।।
मैं अब बरनौं भक्तिवस, सक्ति भूल मुझ नाहिं ।।२४।।

वरनौं पूरवकथितक्रम, ग्रंथअर्थ अवधारि ।।
सुगमरुप संछेपसौं, सुनौ सबहि नरनारि ।।२५।।

चौपाई ।

मगधदेस देसनि-परधान । राजगृही नगरी सुभथान ।।
राज करै स्रेनिक भूपाल । नीतवंत नृप पुन्यविसाल ।।२६।।

छायक-सम्यकदरसनसार । रूप सील सबगुनआधार ।।
तिनके घर अंतेवर घना । पटरानी रानी चेलना ।।२७।।

जाके गुन बरनत बहु भाय । बिरिया लगै कथा बढ़ि जाय ।।
एक दिना निज सभा नरेस । निवसै जैसैं सुरग-सुरेस ।।२८।।

रोमांचित बनपालक ताम । आय राय प्रति कियौ प्रनाम ।।
छह रितुके फल फूल अनूप । आगैं धरे अनूपमरूप ।।२९।।

हाथ जोरि बिनवै बनपाल । विपुलाचल पर्वतके भाल ।।
वर्द्धमान तीर्थंकर आप । आये राजन-पुन्यप्रताप ।।३०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिमा कछु बरनी नहिं जाय । इंद्रादिक सेवैं सब पाय ।।
समोसरनसंपतिकी कथा । मौपै कही जाय किमि तथा ।।३१।।

माली वचन सुनैं सुखदाय । हरष्यौ राजा अंग न माय ।।
दीनैं भूषन वसन उतार । बनमाली लीनैं सिरधार ।।३२।।

सात पैंड़ गिरिसम्मुख जाय । कियौ परोच्छविनय नरराय ।।
आनंदभेरि नगरमैं दई । सबहीकौं दरसनरुचि भई ।।३३।।

चल्यौ संग पुरजन समुदाय । बंदे वर्द्धमान जिनराय ।।
लोकोत्तर लछमी अवलोक । गये सकल भूपतिके सोक ।।३४।।

थुति आरंभ करी बहुभाय । बार बार भुवि सीस नबाय ।।
गौतम गुरु पूजे कर जोरि । नरकोटैं बैठ्यौ मद छोरि ।।३५।।

कियौ प्रस्न स्रेणिक बड़ भूप । प्रभु पारस निजकथा अनूप ।।
जाके सुनत पाप छय होय । कहिये देव कृपाकरि सोय ।।३६।।

तब गनधर बोले हितकाज । जोग प्रस्न कीनों नरराज ।।
सुन पुनीत पारसजिनकथा । सफल होय मानुषभव जथा ।।३७।।

दोहा ।

इहि विधि जो मगधेस प्रति, कह्यौ चरित गनराज ।।
ताही क्रम आये कहत आचारज परकाज ।।३८।।

तिनहीके अनुसार अब, कहूँ किमपि विस्तार ।।
जैनकथा कलपति नहीं, यह जानौ निरधार ।।३९।।

जैनवचनवारिधि अगम, पानी अर्थ अनूप ।।
मतिभाजन भर भर लिये, यह जिनआगमरूप ।।४०।।

इति पीठिका ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरुभूतिभव वर्णन ।

चौपाई ।

जंबूदीप दिपै इह सार । सूरजमंडलकी उनहार ॥
मध्य सुमेरु कर्णिकाभास । बने छेत्र दल दीरघ जास ॥४१॥

तारागन मकरंद मनोग । सुर-नर-संग भ्रमरकुलजोग ॥
लवनसमुद्र सरोवरथान । दीप किधौं यह कमल महान ॥४२॥

लच्छ महा जोजन विस्तार । बसै विविध-रचना-आधार ॥
दच्छिन भरत धनुष-संठान । पर्वत फणच नदीजुग बान ॥४३॥

मानों सागरप्रति अनुमानि । तानत तीर छार-जल जानि ॥
ऐसी भांति विराजत खेत । छहों खंडमंडित छबि देत ॥४४॥

पांच मलेच्छ बसैं तामाहिं । धर्म कर्म कछु जानैं नाहिं ॥
उत्तम आरज-खंड मझार । देस सुरम्य बसै मनहार ॥४५॥

जनकुल जहां रहैं बहु भांति । पास पास सोहैं पुर-पांति ॥
सरवर नदी सैल उद्यान । वन उपवनसौं सोभामान ॥४६॥

तहां नगर पोदनपुर नाम । मानों भूमितिलक अभिराम ॥
देवलोककी उपमा धरै । सब ही विध देखत मनहरै ॥४७॥

दोहा ।

तुंग कोट खाई सजल, सघन बाग गृह-पांति ॥
चौपथ चौक बजारसौं, सोहै पुर बहुभांति ॥४८॥

ठाम ठाम गोपुर लसैं, वापी सरवर कूप ॥
किधौं स्वर्गने भूमिकौं, भेजी भेंट अनूप ॥४९॥

चौपाई ।

जैनी प्रजा जहां परवीन । बसै दान-पूजा-व्रतलीन ॥
जैनभवन ऊँचे अति बने । सिखर धुजासौं सोभित घने ॥५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहि विधि पुरसोभा अधिकार । वरनन करत लगै बहुबार ।।
राज करै राजा अरविंद । सोहै मानों स्वर्ग सुरिंद ।।५१।।

पालै प्रजा कुमति जिन दली । नीतिबेलमंडित भुजबली ।।
दयाधाम सज्जन गंभीर । गुनरागी त्यागी रनधीर ।।५२।।

तिस भूपतिकै विप्र सुजान । विस्वभूति मंत्री बुधिवान ।।
ताकै तिया अनूदरि सती । रूपसील-गुन-लच्छनवती ।।५३।।

दोय पुत्र तिनकैं अवतरे । पापपुन्यकी पटतर धरे ।।
जेठो नंदन कमठ कुपूत । दूजो पुत्र सुधी मरुभूत ।।५४।।

दोहा ।

जेठो मतिहेठो कुटिल, लघुसुत सरल सुभाय ।।
विष अम्रत उपजे जुगल, विप्र जलधिके जाय ।।५५।।

बड़े पुत्रने भारजा, ब्याही बरुना नाम ।।
लघुने बरी विसुन्दरी । रूपवती अभिराम ।।५६।।

चौपाई ।

यों सुख निबसैं बांधव दोय । निज निज टेव न टारैं कोय ।।
वक्र चाल विषधर नहिं तजै । हंस वक्रता भूल न भजै ।।५७।।

दोहा ।

उपजे एकहि गर्भसौं, सज्जन दुर्जन येह ।।
लोह-कवच रच्छा करै, खांडो खंडै देह ।।५८।।

चौपाई ।

अति सज्जन मरुभूति-कुमार । नीति-सास्त्रको जाननहार ।।
सबकौं इष्ट सकल गुन-गेह । राजा प्रजा करैं सब नेह ।।५९।।

एक दिना भूपति-मंत्रीस । सेत बाल देख्यौ निज सीस ।।
उपज्यौ विप्र-हियैं वैराग । जान्यौ सब जग अथिर सुहाग ।।६०।।

दोहा ।

जरा मौतकी लघु बहिन, यामैं संसै नाहिं ।।
तौ भी सुहित न चिंतवैं, बड़ी भूल जगमाहिं ।।६१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

यह विचार मंत्री मनमाहिं । निज सुत सौंपि रायकी बांहिं ।।
सुगुरु-साखि जिन-चारित लियौ । वनोवास आतमहित कियौ ।।६२।।

अब मरुभूति विप्र सुख करै । अहनिस नीतिपंथ पग धरै ।।
राजा प्रीति करै बहु भाय । सोमप्रकृति सबकौं सुखदाय ।।६३।।

एक समय आपन अरविंद । मंत्री सेनासहित नरिंद ।।
राय वज्रवीरजपर चढ़े । क्रोधभाव उरमैं अति बढ़े ।।६४।।

पीछे कमठ निरंकुश होय । लग्यौ अनीति करन सठ सोय ।।
जो मन आवै सो हठ गहै । 'मैं राजा' सबसौं इम कहै ।।६५।।

एक दिना निज भ्राता नारि । भूषन-भूषितरूप निहारि ।।
रागअंध अति विहवल भयौ । तीच्छन कामताप उर तयौ ।।६६।।

महा मलिन उर बसैं कुभाव । दुर्गतिगामी जीव सुभाव ।।
पुत्री सम लघुभ्राता नारि । तहां कुदिष्ट धरी अविचारि ।।६७।।

दोहा ।

पाप कर्मकौ डर नहीं, नहीं लोककी लाज ।।
कामी जनकी रीति यह, धिक तिस जन्म अकाज ।।६८।।

कामी काज अकाजमैं, हो हैं अंध अवेव ।।
मदनमत्त मदमत्त सम, जरो जरो यह टेव ।।६९।।

पिता नीर परसै नहीं, दूर रहै रवि यार ।।
ता अंबुजमैं मूढ़ अलि, उरझि मरै अविचार ।।७०।।

त्यों ही कुविसनरत पुरुष, होय अवस अविवेक ।।
हित-अनहित सोचै नहीं, हियैं विसनकी टेक ।।७१।।

चौपाई ।

बनमैं सघन लतागृह जहां । गयौ कमठ कामातुर तहां ।।
बढ़ी वेदना कल नहिं परै । छिन छिन काम-विथा दुख करै ।।७२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमठ सखा कलहंस विसेख । पूछत भयौ दुखी तिह देख ॥
कौन व्याधि उपजी तुम अंग । अतिव्याकुल दीखत सरवंग ॥७३॥

तब तिन लाज छोरि सब सही । मनकी बात मित्रसौं कही ॥
सुनि कलहंस कथा विपरीति । सिच्छावचन कहे करि प्रीति ॥७४॥

अति अजोग कारज इह बीर । सो तुम चिंत्यौ साहस-धीर ॥
परनारीसम पाप न आन । परभवदुख इह भव जस-हान ॥७५॥

इस ही बंछासौं अघ भरे । रावण आदि नरकमैं परे ॥
जगमैं जेठ पितासमतूल । बात कहत लाजै नहिं भूल ॥७६॥

तातैं यह हठ भूल न करौ । सुहित सीख मेरी मन धरौ ॥
लोकनिंद कारज यह जान । धर्मनिंद निहचै उर आन ॥७७॥

दोहा ।

यों कलहंस अनेक विध, दई सीख सुखदैन ॥
ते सब कमठ-कुसील-प्रति, भये विफल हितवैन ॥७८॥

आयुहीन नर-कौं जथा, औषधि लगै न लेस ॥
त्यों ही रागी-पुरुष प्रति, वृथा धरम-उपदेस ॥७९॥

बोल्यौ तब कामी कमठ, सुनो मित्र निरधार ॥
जो नहिं मिलै विसुंदरी, तो मुझ मरन विचार ॥८०॥

देख कमठकी अधिक हठ, कुमति करी कलहंस ॥
जाय कहे ता नारिसौं, झूठ वचन अपसंस ॥८१॥

अडिल्ल छंद ।

सुन विसुंदरी आज कमठ बनमैं दुखी ।
तू ताकी सुध लेहु होय जिहि विधि सुखी ॥
सुनते ही सतभाव गई बनमैं तहां ।
निवसै कर परपंच कमठ कपटी जहां ॥८२॥

दोहा ।

छलबल कर भीतर लई, वनिता गई अजान ॥
राग वचन भाखे विविध, दुराचारकी खान ॥८३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाल छंद ।

गजमातो कमठ कलंकी । अघसौं मनसा नहिं संकी ।।
भावज वन-करनी रंजो । निज सीलतरोवर भंजो ।।८४।।

रिपु जीत विजयजस पायौ । अरविंद नृपति घर आयौ ।।
जे कर्म कमठने कीनैं । राजा सब ते सुन लीनैं ।।८५।।

मंत्री मरुभूति बुलायौ । ताकौं सब भेद सुनायौ ।।
कहु विप्र सुधी क्या कीजै । क्या दंड इसै अब दीजै ।।८६।।

दुज कहै सरल परिनामी । अपराध छिमा कर स्वामी ।।
जो एक दोष सुन लीजे । ताकौं प्रभु दंड न दीजै ।।८७।।

तब भूप कहै सुन भाई । जो निग्रहजोग अन्याई ।।
तापै करुना किम होहै । यह न्याय नृपति नहिं सोहै ।।८८।।

तातैं गृह गच्छ सयाने । मत खेद हियैं कछु आने ।।
ऐसैं कह विप्र पठायौ । तिस पीछैं कमठ बुलायौ ।।८९।।

अति निंदो नीच कुकर्मी । जानो निरधार अधर्मी ।।
राजा अति ही रिस कीनौं । सिर मुंड दंड बहु दीनौं ।।९०।।

मुखकै कालोंस लगाई । खर रोप्यौ पीर न आई ।।
फिर सारे नगर फिरायौ । प्रति बीथी ढोल बजायौ ।।९१।।

इस भांति कमठकी ख्वारी । देखैं सब ही नर नारी ।।
पुरवासी लोक धिकारैं । बालक मिलि कंकर मारैं ।।९२।।

यों दंड दियौ अति भारी । फिर दीनौं देश निकारी ।।
जो दीरघ पाप कमाये । ततकाल उदै बहु आये ।।९३।।

दोहा ।

इहि विधि फूल्यौ पाप-तरु, देख्यौ सब संसार ।।
आगे फलहै नरक फल, धिक दुर्विसन असार ।।९४।।

चौपाई ।

महादंड भूपति जब दयौ । कमठ कुसील दुखी अति भयौ ।।
बिलखत वदन गयौ चल तहां । भूताचलपर्वत है जहां ।।९५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहै तहां तपसी-समुदाय । ग्यानविना सब सोखैं काय ।।
केई रहे अधोमुख झूल । धूंआं पान करैं अघमूल ।।९६।।

केई ऊरधमुखी अघोर । देखैं सबै गगनकी ओर ।।
केई निवसैं ऊरध बाहिं । दुविध दयासौं परचै नाहिं ।।९७।।

केई पंच अगनि झल सहैं । केई सदा मौनमुख रहैं ।।
केई बैटे भसम चढ़ाय । केई मृगछाला तन लाय ।।९८।।

नख बढ़ाय केई दुख भरैं । केई जटा-भार सिर धरैं ।।
यों अग्यान तपलीन मलीन । करैं खेद परमारथहीन ।।९९।।

तिनमैं एक तापसीनाथ । प्रनम्यौ ताहि धरे सिर हाथ ।।
तिन असीस दे आदर कियौ । दिच्छादान कमठ तहँ लियौ ।।१००।।

करन लग्यौ तब कायकलेस । उर वैराग विवेक न लेस ।।
ठाँढ़ो भयौ सिला कर लिये । किधौं फनी फन ऊँचो किये ।।१०१।।

मंत्री बंधवकी सुधि पाय । राजासौ विनयो इमि आय ।।
भूताचलपर्वतकी ओर । भ्राता कमठ करै तप घोर ।।१०२।।

जो नर नायक आग्या होय । देखूं जाय सहोदर सोय ।।
पूछै नृपति कौन तप करै । भो प्रभु तापसके व्रत धरै ।।१०३।।

एक बार मिलि आऊं ताहि । राय कहै मंत्री मत जाहि ।।
खलसौं मिले कहा सुख होय । विषधर भेंटे लाभ न कोय ।।१०४।।

बरजौ रह्यौ न बारंबार । महा सरलचित विप्रकुमार ।।
भ्रातमोहबस उद्यम कियौ । कोमल होत सुजनको हियौ ।।१०५।।

दोहा ।

दुर्जनदूखित संतकौ, सरल सुभाव न जाय ।।
दर्पणकी छवि छारसौं, अधिकहि उज्जल थाय ।।१०६।।

सज्जन टरै न टेवसौं, जो दुर्जन दुख देय ।।
चंदन कटत कुठारमुख । अवसि सुवास करेय ।।१०७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

गयो विप्र एकाकी तहां । कमठ कठोर करै तप जहां ।।
विनयवंत हो विनयो तास । महा सरलवायक मुख भास ।।१०८।।

भो बंधव तो उर गंभीर । यह अपराध छिमा कर बीर ।।
मैं तो राय बहुत बीनयो । मानी नाहीं तुमैं दुख दयो ।।१०९।।

होनहारसौं कहा वसाय । तुम विन मोहि कछू न सुहाय ।।
यों कह पांयन लाग्यौ जाम । कोप्यौ अधिक कमठ दुठ ताम ।।११०।।

दोहा ।

दुर्जन और सलेखमा, ये समान जगमाहिं ।।
ज्यों ज्यों मधुरो दीजिये, त्यों त्यों कोप कराहिं ।।१११।।

सिला सहोदर सीसपै, डारी वज्र समान ।।
पीर न आई पिसुनकौं, धिक दुर्जनकी बान ।।११२।।

दुर्जनको विस्वास जे, करि हैं नर अविचार ।।
ते मंत्री मरुभूति सम, दुख पावैं निरधार ।।११३।।

दुर्जन जनकी प्रीतसौं, कहो कैसे सुख होय ।।
विषधर पोषि पियूषकी, प्रापति सुनी न लोय ।।११४।।

मंत्रीतनतैं रुधिरकी, उछली छींट कराल ।।
दुर्जन हित तरुतैं किधौं, निकसी कोंपल लाल ।।११५।।

इहिविधि पापी कमठने, हत्या करी महान ।।
तब तपसी मिलि नीच नर, काढ़ दियौ दुठ जान ।।११६।।

चौपाई ।

फेरि दुष्ट भीलनतैं मिल्यो । भयो चोर घर मूसन हिल्यौ ।।
पाप करत कर आयो जबै । बांधि बुरी विधि मार्‍यौ तबै ।।११७।।

दोहा ।

जैसी करनी आचरै, तैसो ही फल होय ।।
इन्द्रायनकी बेलिकै, आंब न लागै कोय ।।११८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई।

एक दिना अरविंद नरिंद। पूंछे कर जुग जोरि मुनिंद ।।
भो प्रभु मुझ मंत्री मरुभूत। क्यों नहिं आयौ ब्राह्मनपूत ।।११९।।

यह सुनि अवधिवंत मुनिराय। सब बिरतंत कह्यौ समुझाय ।।
राजा मन अति भयौ मलीन। हा मंत्री सज्जनता-लीन ।।१२०।।

बरजत गयौ दुष्टके पास। कुमरन लह्यौ सह्यौ बहु त्रास ।।
होनहार सोई विधि होय। ताहि मिटाय सकै नहिं कोय ।।१२१।।

यों विचारि मन सोक मिटाय। साधु पूजि घर आये राय ।।
यह सुनि दुष्टसंग परिहरो। सुखदायक सतसंगति करो ।।१२२।।

छप्पय।

तपे तबापर आय, स्वातिजलबूंद विनट्ठी।
कमल-पत्र-परसंग, वही मोतीसम दिट्ठी ।।
सागर-सीप समीप, भयो मुक्ताफल सोई।
संगतको परभाव, प्रगट देखो सब कोई ।।
यों नीचसंगतैं नीचफल, मध्यमतैं मध्यम सही।
उत्तम सँजोगतैं जीवको, उत्तम फल प्रापति कही ।।१२३।।

इतिश्रीपार्श्वपुराणभाषायां मरुभूतिभववर्णनं नाम

प्रथमोऽधिकारः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गज स्वर्ग गमन विद्याधर भव विद्युत्प्रभदेव भव वर्णन ।

दोहा

अस्वसेन कुलचंद्रमा, बामा उर अवतार ।।
बंदौं पारस पदकमल, भविजन-अलि आधार ।।१।।

पद्धरी छंद ।

इसभांति तजे मरुभूति प्रान । अब सुनो कथा आगे सुजान ।।
अतिसघन सल्लकी बन विशाल । जहं तरुवर तुंग तमाल ताल ।।२।।

बहु बेलजाल छाये निकुंज । कहिं सूखि परे तिन पत्रपुंज ।।
कहिं सिकताथल कहिं सुद्ध भूमि । कहिं कपि तरुडारन रहे झूमि ।।३।।

कहिं सजलथान कहिं गिरि उतंग । कहिं रीछ रोज विचरैं कुरंग ।।
तिस थानक आरत-ध्यान दोष । उपज्यौ वनहस्ती वज्रघोष ।।४।।

अति उन्नत मस्तकसिखर जास । मद-जीवन झरना झरहिं तास ।।
दीसै तमवरन विसाल देह । मनों गिरिजंगम दूसरो येह ।।५।।

जाको तन नख शिख छोभवंत । मुसलोपम दीरघ धवल दंत ।।
मदभीजे झलकैं जुगल गंड । छिन छिनसौं फेरैं सुंड दंड ।।६।।

जो बरुना नामैं कमठ नार । पोदनपुर निवसै निराधार ।।
सो मरि तिहि हथिनी हुई आन । तिस संग रमै नित रंजमान ।।

कबही बहु खंडै बिरछ-बेलि । कबही रजरंजित करहि केलि ।।
कबही सर-वर-मैं तिरहि जाय । कबही जल छिरकै मत्तकाय ।।

कबही मुख पंकज तोरि देय, कबही दह-कादो अंग लेय ।।९।।

दोहा ।

यों सुछंद क्रीड़ा करै, बरुना-हथिनी सत्थ ।।
बन निवसै बारण बली, मारण-सील समत्थ ।।१०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

एक दिवस अरविंद नरेस । ज्यों विमानमैं स्वर्ग सुरेस ।।
यों निज महलन निवसै भूप । देख्यौ बादल एक अनूप ।।११।।

तुंग सिखर अति उज्जल महा । मानों मंदिर ही बनि रहा ।।
नरवै निरखि चिंतवै ताम । ऐसो ही करिये जिनधाम ।।१२।।

लिखनहेत कागद कर लयौ । इतने सो सरूप मिटि गयौ ।।
तब भूपति उर करै विचार । जगतरीति सब अथिर असार ।।१३।।

तन-धन-राज संपदा सबै । यों ही विनसि जायगी अबै ।।
मोहमत्त प्रानी हठ गहै । अथिर वस्तुकौं थिर सरदहै ।।१४।।

जो पररूप पदारथ जाति । ते अपने मानै दिनराति ।।
भोगभाव सब दुखके हेत । तिनहीकौं जानै सुखखेत ।।१५।।

ज्यों माचन-कोदों परभाव । जाय जथारथ दिष्टि स्वभाव ।।
समझै पुरुष औरकी और । त्यों ही जगजीवनकी दौर ।।१६।।

पुत्र कलत्र मित्रजन जेह । स्वास्थ लगे सगे सब एह ।।
सुपन-सरूप सकल संभोग । निज हित हेत विलंब न जोग ।।१७।।

यों भूपति वैराग विचारि । डारी पोट परिग्रह भारि ।।
राजसमाज पुत्रकौं दियौ । सुगुरुसाखि नृप चारित लियौ ।।१८।।

धरी दिगंबरमुद्रा सार । करै उचित आहार विहार ।।
बारहविध दुद्धर तपलीन । छहों काय पीहर परवीन ।।१९।।

एकसमय अरविंद मुनीस । सारथबाहीके संग ईस ।।
सिखर सुमेरु बंदनाहेत । चले ईरज्यापथ पग देत ।।२०।।

गये सल्लकी बनमैं लंघ । तहां जाय उतर्‍यौ सब संघ ।।
निज सिज्झाय-समय मन लाय । प्रतिमा-जोग दियौ मुनिराय ।।२१।।

तावत वज्रघोष गजराज । आयौ कोपि काल-सम गाज ।।
सकल संग मैं खलबल परी । भाजे लोग कीकि धुनि करी ।।२२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गजके धकै पर्खो जो कोय । सो प्रानी पहुँच्यौ परलोय ।।
मारे तुरग तिसाये गैल । मारे मारगहारे बैल ।।२३।।

मारे भूखे करहा खरे । मारे जन भाजे भय भरे ।।
इहि-विध हाथी करत सँघार । मुनि सनमुख आयौ किलकार ।।२४।।

अति विकराल रोषविष भरौ । मुनि मारनकौ उद्यम करौ ।।
साधु सुदर्सन मेरु समान । सिरीवच्छ लच्छन उर थान ।।२५।।

सो सुचिन्ह गज देख्यौ जाम । जाती-सुमरन उपज्यौ ताम ।।
ततखिन सांत भयौ गजईस । मुनिके चरन धर्खौ निज सीस ।।२६।।

तब मुनि चवै मधुर धुनि महा । रे गयंद यह कीनौं कहा ।।
हिंसा करम परम अघहेत । हिंसा दुरगतिके दुख देत ।।२७।।

हिंसासौं भमिये संसार । हिंसा निजपरकौं दुखकार ।।
तैं ये जीव विधुंसे आय । पातकतैं न डर्खौ गजराय ।।२८।।

देखि देखि अघके फल कौन । लई विप्रतैं कुंजर-जौन ।।
तू मंत्री मरुभूति सुजान । मैं अरविंद क्यों न पहिचान ।।२९।।

धर्मविमुख आरतके दोष । पसु-परजाय लई दुखकोष ।।
अब गजपति ये भाव निवारि । धर्मभावना हिरदैं धारि ।।३०।।

सम्यकदरसन-पूरब जान । पालि अनुव्रत जब लौं प्रान ।।
सुन करिंद उर कोमल थयौ । किये पाप निज निंदत भयौ ।।३१।।

दोहा ।

फिर गुरु-पाँयन सिर धर्खौ, धर्म गहन उर हेत ।।
तब सत्यारथ धर्मविधि, कही साधु समचेत ।।३२।।

चौपाई ।

सुन हस्ती सासनअनुकूल । सकल धरमकौ दर्सन मूल ।।
सब गुनरत्नकोष यह जान । मुक्ति-धौरहर-धुर-सोपान ।।३३।।

तातैं यह सबहीकौ सार । या बिन सब आचरन असार ।।
जो सरदहै औरकी और । सो मिथ्यात-भावकी दौर ।।३४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोष अठारह-वरजित देव । दुविध-संग-त्यागी गुरु एव ।।
हिंसा-वरजित धरम अनूप । यह सरधा समकितकौ रूप ।।३५।।

दोहा ।

संकादिक दूषन बिना, आठौं अंग समेत ।।
मोख-बिरछ-अंकूर यह, उपजै भवि-उर-खेत ।।३६।।

चौपाई ।

अंगहीन दरसन जगमाहिं । भवदुख-मेटन समरथ नाहिं ।।
अच्छरऊन मंत्र जो होय । विषबाधा मेटै नहिं सोय ।।३७।।

तातैं यह निरनय उरआन । यह हिरदैं सम्यक सरधान ।।
पंच उदंबर तीन मकार । इनकौं तजि बारह व्रत धार ।।३८।।

इहि विध गुरु दीनौं उपदेस । वारण हरषित भयौ विसेस ।।
सुगुरुवचन सब हिरदैं धरै । सम्यकपूरब व्रत आदरै ।।३९।।

बार बार भुविसौं सिर लाय । मुनिवर चरन नमै गजराय ।।
चले साधु तिहिं हित उपजाय । तब हाथी आयौ पहुँचाय ।।४०।।

दोहा ।

करि उपगार मुनीस तहँ, कीनौं सुविधि विहार ।।
बन निवसै गजपति व्रती, सुगुरु सीख उर धार ।।४१।।

चालछंद ।

अब हस्ती संजम साधै । त्रसजीव न भूलि विराधै ।।
समभाव छिमा उर आनै । अरि मित्र बराबर जानै ।।४२।।

काया कसि इंद्री दंडै । साहस धरि प्रोषध मंडै ।।
सूखे तृन पल्लव भच्छै । परमर्दित मारग गच्छै ।।४३।।

हाथीगन डोह्यौ पानी । सो पीवै गजपति ग्यानी ।।
देखे बिन पांव न राखै । तन पानी पंक न नाखै ।।४४।।

निजसील कभी नहिं खोवै । हथिनीदिस भूलि न जोवै ।।
उपसर्ग सहै अति भारी । दुरध्यान तजै दुखकारी ।।४५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अघके भय अंग न हालै । दिढ़ धीर प्रतिग्या पालै ।।
चिरलौं दुद्धर तप कीनौं । बलहीन भयौ तन छीनौं ।।४६।।

परमेष्ठि परमपद ध्यावै । ऐसैं गज काल गमावे ।।
एकै दिन अधिक तिसायौ । तब वेगवती तट आयौ ।।४७।।

जल पीवन उद्यम कीधौ । कादो-द्रह कुंजर बीधौ ।।
निहचै जब मरन विचारौ । संन्यास सुधी तब धारौ ।।४८।।

सो कमठ कलंकी भूवो । ता बन कुरकट अहि हूवो ।।
तिन आय डस्यो गज ग्याता । यह बैर महादुखदाता ।।४९।।

दोहा ।

मरन कस्यौ गजराज तब, राखे निर्मल भाव ।।
सुरग बारवैं सुर भयौ, देखौ धर्मप्रभाव ।।५०।।

चौपाई ।

तहां स्वयंप्रभ नाम विमान । ससिप्रभदेव भयौ तिहिं थान ।।
अवधि जोड़ सब जान्यौ देव । व्रतकौ फल पूरबभव भेव ।।५१।।

जिनसासन संसौ बहुभाय । धर्मविषै दिढ़ता मन लाय ।।
सदा सासते श्रीजिनधाम । पूजा करी तहां अभिराम ।।५२।।

महामेरु नंदीसुर आदि । पूजे तहां जिनबिंब अनादि ।।
कल्यानक-पूजा विस्तरै । पुन्यभंडार देव यों भरै ।।५३।।

सोलह सागर आयु प्रमान । साढ़े तीन हाथ तन जान ।।
सोलह सहस वर्ष जब जाहिं । असन-चाह उपजै उरमाहिं ।।५४।।

अनुपम अम्रतमय आहार । मनसौं भुंजै देवकुमार ।।
आटदुगुन पख बीतैं जास । तब सो लेय सुगंध उसास ।।५५।।

अवधि चतुर्थ अवनि परजंत । यही विक्रियाबल बिरतंत ।।
अवधिछेत्र जावत परमान । होय विक्रिया तावत मान ।।५६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

वदन चंद्र उपमा धरै, विकसित वारिज नैन ।।
अंग अंग भूषन लसैं, सब बानक सुखदैन ।।५७।।

सुंदर तन सुंदर वचन, सुंदर स्वर्गनिवास ।।
सुंदर वनितामंडली, सुंदर सुरगन दास ।।५८।।

अनिमा महिमा आदि दे, आठ रिद्धि फल पाय ।।
सुर सुछंद क्रीड़ा करै, जो मन बरतै आय ।।५९।।

सुनत गीत-संगीत-धुनि, निरखत निरत रसाल ।।
सुखसागरमैं मगन सुर, जात न जानै काल ।।६०।।

लोकोत्तम सब संपदा, अनुपम इंद्रीभोग ।।
सुफल फल्यौ तपकल्पतरु, मिल्यौ सकल सुखजोग ।।६१।।

जैवंतो बरतो सदा, जैनधर्म जगमाहिं ।।
जाके सेवत दुखसमुद, पसुपंछी तिर जाहिं ।।६२।।

छंद

इसही जंबूदीप, पूर्व विदेह मझारै ।।
पुहकलावती देस, विकसत नैन निहारै ।।६३।।

तहां विजयारध नाम, सोहै सैल रवानो ।।
उज्जल वरन विसाल, रूपमई गिरिरानो ।।६४।।

जोजन परम पचास, भूमिविसै चौड़ाई ।।
तुंग पचीस प्रमान, सोभा कही न जाई ।।६५।।

चौथाई भूमांझ, नौ सिर कूट विराजैं ।।
सिद्धसिखर जिनधाम, मनिप्रतिमा तहां छाजैं ।।६६।।

उत्तर दच्छिन ओर, श्रेणी दोय जहां हैं ।।
दोय गुफा गिरि हेठ, अति अंधियार तहां हैं ।।६७।।

तापर स्वर्ग समान, लोकोत्तम पुर सोहै ।।
वापी-कूप-तलाव, -मंडित सुर मनमोहै ।।६८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्युतगति भूपाल, न्याय प्रजा प्रतिपालै ।।
नीतिनिपुन धर्मग्य, संत सुमारग चालै ।।६९।।

विद्युतमाला नांव, ता घर नारि सयानी ।।
मानौं मनमथ जोग, आय मिली रतिरानी ।।७०।।

तिनकै सो सुर आय, पुत्र भयौ बड़भागी ।।
अगनिवेग तसु नाम, अति सुंदर सौभागी ।।७१।।

सोमप्रकृति परवीन, सकल सुलच्छन-धारी ।।
जिनपदभक्ति पुनीत, सबहीकौं सुखकारी ।।७२।।

राजसंपदा भोग, भुंजत पुन्यनियोगै ।।
एक दिना इन साधु, भेंटे भाग संजोगै ।।७३।।

स्रवन सुन्यौ उपदेस, भर जोबन वैराग्यौ ।।
आसन भव्य कुमार, संजमसौं अनुराग्यौ ।।७४।।

तजि परिग्रह गुरुसाख, पंचमहाव्रत लीनैं ।।
दुद्धर तप आराध, रागादिक कृस कीनैं ।।७५।।

छीन किये परमाद, विचरैं एकविहारी ।।
बारह अंग समुद्र, पार भयौ स्रुतधारी ।।७६।।

एक दिवस धरि जोग,हिमगिरि-कंदर माहीं ।।
निवसै आतमलीन, बाहरकी सुधि नाहीं ।।७७।।

दोहा ।

कुरकट नामा कमठचर, दुष्टनाग दुखदाय ।।
सो मरि पंचम नरकमैं, पर्‍यौ पापवस जाय ।।७८।।

छेदन भेदन आदि बहु, तहां वेदना घोर ।।
सहस जीभसौं बरनिये, तऊ न आवै ओर ।।७९।।

ऐसे दुखमैं कमठ जिय, कीनी पूरन आव ।।
सत्रह सागर भुगतकै, निकस्यौ कूरसुभाव ।।८०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

बैर भाव उरतैं नहि टर्‌यौ । फेरि आय अजगर अवतर्‌यौ ।।
संसकारवस आयौ तहां । हिमगिरि गुफा मुनीसुर जहां ।।८१।।

गिले साधु संजमधर धीर । समभावनतैं तज्यौ सरीर ।।
लीनौं स्वर्गसोलवैं बास । जो नित निरुपम भोग-निवास ।।८२।।

जन्म-सेजतैं जोबन पाय । उठ्यौ अमर संपूरन काय ।।
देखि संपदा विस्मय भयौ । अवधि होत संसै सब गयौ ।।८३।।

पूजा करी जिनालय जाय । भक्ति-भाव-रोमांचित काय ।।
पूरव-संचित पुन्य-संजोग । करै तहां सुर वांछित भोग ।।८४।।

गये बरस बाईस हजार । भोजन भुंजै मनसाहार ।।
तावतमान पच्छ जब जाय । तब ऊसांसौं दिसि महकाय ।।८५।।

देखै पंचम भू-परजंत । अवधिग्यान-बल मूरतिवंत ।।
तितनैं मान विक्रिया करै । गमनागमन हियैं जब धरै ।।८६।।

तीन हाथ अति सुंदर काय । लेस्या सुकल महा सुखदाय ।।
थिति सागर बाईस विसाल । इहिविध बीतै सुखमै काल ।।८७।।

दोहा ।

आदि अंत जिस धर्मसौं, सुखी होय सब जीव ।।
ताकौं तन-मन-वचन-करि, हे नर सेव सदीव ।।८८।।

इतिश्रीपार्श्वपुराणभाषायां गजस्वर्गगमनविद्याधरभवविद्युत्प्रभदेवभववर्णनं नाम
द्वितीयोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा अधिकार

वज्रनाभ अहमिन्द्र सुख भिल्ल
नरक दु:ख वर्णन ।

दोहा

अस्वसेन-कुल-कमलरवि, वामाकुँवर कृपाल ।
बंदौं पारस-चरन-जुग, सरनागत-प्रतिपाल ।।१।।

चौपाई ।

जंबूदीप बसै चहुफेर । जाके मध्य सुदर्सन मेर ।
कंचन-मनि-मय अतुल सुहाग । ता पर्वतके पच्छिम भाग ।।२।।

अपर-विदेह विराजै खेत । सो नित चौथे काल समेत ।
पदपद जहां दिपैं जिनधाम । नहीं कुदेवनकौ विसराम ।।३।।

जैनजतीजन दीखैं सोय । नहीं कुलिंगी दीखै कोय ।
उत्तम धर्म सदा थिर रहै । हिंसा धर्म प्रकास न लहै ।।४।।

तीनौं वरन बसैं जहां लोय । ब्राह्मन-वरन कभी नहिं होय ।
तामैं पदमदेस अभिराम । सोहै नगर अस्वपुर नाम ।।५।।

तहां वज्जवीरज भूपाल । न्यायै प्रजा करै प्रतिपाल ।
गुननिवास सूरजसम दिपै । आन भूप उडगन-छबि छिपै ।।६।।

विजया नामैं नरपति-नारि । रूपवंत रतिकी उनहारि ।
पटरानी सबमैं परधान, पूरब पुन्य-उदय गुणखान ।।७।।

एक समय निसि पच्छिम जाम । पंच सुपन देखे अभिराम ।
मेरु दिवाकर-चंद्र-विमान । सजल सरोवर सिंधु समान ।।८।।

प्रात भये आई पियपास । विकसत लोचन हियैं हुलास ।
रातसुपन अवलोके जेह । नृप आगैं परकासे तेह ।।९।।

तब नरिन्द बोले बिहसाय । सुंदर वचन स्त्रवन-सुखदाय ।
सुनि रानी इनकौ फल जोय । पुत्र प्रधान तिहारे होय ।।१०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे वच पियके अवधारि । अति आनंद भयौ नृपनारि ।
अचुत स्वर्गतैं सो सुर चयो । वज्रनाभि नामा सुत भयौ ।।११।।

चौसठ लच्छन लच्छित काय । पुन्य-जोग जिमि उतर्यौ आय ।
जनम महोच्छव राजा कियौ । जिन पूजे जाचक धन दियौ ।।१२।।

बढ़ै बाल जिमि बालक-चंद । सुजन लोक लोचन सुखकंद ।
क्रमक्रमसौं सिसु भयौ कुमार । पढ़ लीनी विद्या सब सार ।।१३।।

जोबनवंत कुमर जब भयौ । निर्मल नीतिपंथ पग ठयौ ।
रूप-तेज-बल-बुद्धि-विग्यान । सकल सारगुन-रत्न-निधान ।।१४।।

कीनी पिता ब्याहविधि जोग । राजसुता बहु बरीं मनोग ।
क्रमकरि कुमर पितापद पाय । राज करै थुति करिय न जाय ।।१५।।

पुन्य जोग आयुध-गृह जहां । चक्र-रतन वर उपज्यौ तहां ।
छहोंखंडवरती भूपाल । बस कीनैं नाये निजभाल ।।१६।।

देव दैत्य विद्याधर नये । नृप मलेच्छ सब सेवक भये ।
बढ़ी संपदा पुन्य सँजोग । इन्द्र समान करै सुख भोग ।।१७।।

दोहा ।

संपूरन सुख भोगवै, वज्रनाभि चक्रेस ।
तिस विभूतिबल बरनऊं, जथासकति लवलेस ।।१८।।

चौपाई ।

सहस बतीस सासते देस । धन कन कंचन भरे विसेस ।
विपुल बाढ़ बेढ़े चहुंओर । ते सब गांव छानवै कोर ।।१९।।

कोट कोट दरवाजे चार । ऐसे पुर छब्बीस हजार ।
जिनकौं लगैं पांचसौं गांव । ते अटंब चउ सहस सुठांव ।।२०।।

पर्वत और नदीके पेट । सोलह सहस कहे वे खेट ।
कर्वट नाम सहस चौवीस । केवल गिरिवर बेढ़े दीस ।।२१।।

पत्तन अड़तालीस हजार । रतन जहां उपजैं अति सार ।
एकलाख द्रोणीमुख वीर । सहस घाट सागरके तीर ।।२२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरि ऊपर संबाहन जान । चौदह सहस मनोहर थान ।
अट्ठाईस हजार असेस । दुर्ग जहां रिपुकौ न प्रवेस ।।२३।।

उपसमुद्रके मध्य महान । अंतरदीप छपन परिमान ।
रतनाकर छब्बीस हजार । बहु विध सार वस्तुभंडार ।।२४।।

रतनकुच्छ सुंदर सातसै । रतनधरा थानक जहँ लसै ।
इन पुरसौं वस राजैं खरे । जैनधाम धरनी जनभरे ।।२५।।

वर गयंद चौरासी लाख । इतने ही रथ आगम-साख ।
तेज तुरंग अठारह कोर । जे बढ़ चलैं पवनतैं जोर ।।२६।।

पुनि चौरासी कोटि प्रमान । पायक संघ बड़े बलवान ।
सहस छानवै वनिता गेह । तिनकौ अब विवरन सुन लेह ।।२७।।

आरज-खंड बसैं नरईस । तिनकी कन्या सहस बतीस ।
इतनी ही अतिरूप रसाल । विद्याधर-पुत्री गुनमाल ।।२८।।

पुनि मलेच्छ भूपनकी जान । राजकुमारी तावतमान ।
नाटकिगन बत्तीस हजार । चक्री नृपकौं सुखदातार ।।२९।।

आदि सरीर आदि संठान । पूर्वकथित तन लच्छन जान ।
बहुविध विंजनसहित मनोग । हेमवरन तन सहज निरोग ।।३०।।

छहों खंड भूपति बलरास । तिनसौं अधिक देहबल जास ।
सहस बतीस चरन-तल रमैं । मुकटबंध राजा नित नमैं ।।३१।।

भूप मलेच्छ छोरि अभिमान । सहस अठारह मानैं आन ।
पुनि गनबद्ध बखानैं देव । सोलह सहस करैं नृप सेव ।।३२।।

कोटि थाल कंचन निर्मान ।लाखकोटि हलसहित किसान ।
नाना बरन गऊकुल भरे । तीनकोटि व्रज आगम धरे ।।३३।।

दोहा ।

अब नवनिधिके नाम गुन, सुनौ जथारथ-रूप ।
जैनी बिन जानै नहीं, जिनकौ सहज सरूप ।।३४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

प्रथम कालनिधि सुभ आकार । सो अनेक पुस्तक दातार ।
महाकाल निधि दूजी कही । याकी महिमा सुनियौ सही ।।३५।।

असि मसि आदिक साधन जोग । सामग्री सब देय मनोग ।
तीजी निधि नैसर्प महान । नाना विध भाजनकी खान ।।३६।।

पांडुक नाम चतुरथी होय । सब रसधान समप्पै सोय ।
पदम पंचमी सुक्रतखेत । वांछित वसन निरंतर देत ।।३७।।

मानव नाम छठी निधि जेह । आयुधजात जन्मभू देह ।
सप्तम सुभग पिंगला नाम । बहुभूषन आपै अभिराम ।।३८।।

संख निधान् आठमी गनी । सब वाजित्र-भूमिका बनी ।
सर्वरत्न नवमी निधि सार । सो नित सर्वरत्न-भंडार ।।३९।।

दोहा ।

ये नौनिधि चक्रे-सकै, सकटाकृत संठान ।
आठ चक्र संजुक्त सुभ, चौखूँटी सब जान ।।४०।।

जोजन आठ उतंग अति, नव जोजन विस्तार ।
बारह मित दीरघ सकल, बसैं गगन निरधार ।।४१।।

एक एकके सहस मित, रखवाले जखदेव ।
ये निधि नरपति पुन्यसौं, सुखदायक स्वयमेव ।।४२।।

चौपाई ।

प्रथम सुदरसन चक्रपसत्थ । छहों खंड साधन समरत्थ ।
चंडवेग दिढदंड दुतीय । जिस बल खुलै गुफा गिरिकीय ।।४३।।

चर्मरत्न सो तृतिय निवेद । महा वज्रमय नीर अभेद ।
चतुरथ चूडामनि मनि-रैन । अंधकार-नासक सुखदैन ।।४४।।

पंचम रत्न काकिनी जान । चिंतामनि जाकौ अभिधान ।
इन दोनोंतैं गुफा मँझार । ससिसूरज लखिये निरधार ।।४५।।

सूरजप्रभ सुभ छत्र महान । सो अति जगमगाय ज्यों भान ।
सौनंदक असि अधिक प्रचंड । डरै देखि बैरी बलबंड ।।४६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनि अजोध सेनापति सूर । जो दिगविजय करै बल भूर ।
बुधसागर प्रोहित परवीर । बुधिनिधान विद्यागुनलीन ।।४७।।

थपित भद्रमुख नाम महंत । सिल्प-कला-कोविद गुनवंत ।
कामवृद्ध गृहपति विख्यात । सब गृहकाज करै दिनरात ।।४८।।

ब्याल विजयगिरि अति अभिराम । तुरग तेज पवनंजय नाम ।
वनिता नाम सुभद्रा कही । चूरै वज्ज पानिसौं सही ।।४९।।

महादेहबल धारै सोय । जा पटतर तिय अवर न कोय ।
मुख्यरतन यह चौदह जान । और रतनकौ कौन प्रमान ।।५०।।

दोहा ।

राजअंग चौदह रतन, विविध भांति सुखकार ।
जिनकी सुर सेवा करैं, पुन्यतरोवर-डार ।।५१।।

चक्र छत्र असि दंड मनि, चर्म काकिनी नाम ।
सात रतन निर्जीव यह, चक्रवर्तिके धाम ।।५२।।

सेनापति गृहपति थपित, प्रोहित नाग तुरंग ।
वनिता मिलि सातौं रतन, ये सजीव सरवंग ।।५३।।

चक्र छत्र असि दंड ये, उपजैं आयुधथान ।
चर्म काकिनी मनिरतन, श्रीगृह उतपति जान ।।५४।।

गज तुरंग तिय तीन ये, रूपाचलतैं होत ।
चार रतन बाकी विमल, निजपुर लहैं उदोत ।।५५।।

चौपाई ।

मुख्य संपदाकौ विरतंत । आगैं और सुनौ मतिवंत ।
सिंहबाहनी सेज मनोग । सिंहारूढ चक्कवै जोग ।।५६।।

आसन तुंग अनुत्तर नाम । मानिक-जाल-जटित अभिराम ।
अनुपम नामा चमर अनूप । गंगा-तरल-तरंग-सरूप ।।५७।।

विद्युतदुति मनिकुंडल जोट । छिपै और दुति जाकी ओट ।
कवच अभेद अभेद महान । जामै भिदै न बैरीबान ।।५८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विस-मोचिनी पादुका दोय । परपदसौं विष मुंचैं सोय ।
अजितंजै रथ महारवन्न । जलपै थलवत करै गवन्न ।।५९।।

वज्रकांड चक्रीधर चाप । जाहि चढ़ावत नरपति आप ।
बान अमोघ जबै कर लेत । रनमैं सदा विजय वर देत ।।६०।।

विकट वज्रतुंडा अभिधान । सत्रुखंडिनी सकती जान ।
सिंहाटक बरछी बिकराल । रतनदंड लागी रिपुकाल ।।६१।।

लोहबाहिनी तीखन छुरी । जिमि चमकै चपलादुति दुरी ।
ये सब वस्तुजाति भूमाहिं । चक्री छूट और घर नाहिं ।।६२।।

दोहा ।

मनोवेग नामा कणय (?), ग्रंथन कह्यौ विख्यात ।
खेटभूतमुख नाम है, दोनों आयुध जात ।।६३।।

चौपाई ।

आनंदन भेरी दस दोय । बारह जोजन लौं धुनि होय ।
वज्रघोस पुनि जिनकौ नाम । बारह पटह नृपतिके धाम ।।६४।।

वर गंभीरावर्त गरीस । सोभनरूप संख चौवीस ।
नानावरन धुजा रमनीय । अड़तालीस कोट मित कीय ।।६५।।

इत्यादिक बहुवस्तु अपार । बरनन करत न लहिये पार ।
महलतनी रचना असमान । जिनमत कही सु लीजे जान ।।६६।।

दोहा ।

चक्री नृपकी संपदा । कहै कहां लौं कोय ।
पुन्यबेल पूरब बई, फली सांघनी सोय ।।६७।।

इहि विध वज्रनाभि नरराय । करै भोग चक्रीपद पाय ।
धर्मध्यान अहनिसि आचरै । निर्मल नीतिपंथ पग धरै ।।६८।।

पूजा करै जिनालय जाय । पूजै सदा गुरूके पाय ।
सामायिक साधै अघनास । करै परब प्रोषध उपवास ।।६९।।

चारप्रकार दान नित देय । औगुन त्यागै गुन गह लेय ।
सप्त सील पालै बड़भाग । मनवचकाय धर्मसौं राग ।।७०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंहासनपर बैठि नरेस । करै पुनीत धर्म उपदेस ।
सुजन सभाजन किंकर लोग । देय सुहित-सिच्छा सब जोग ।।७१।।

दोहा ।

बीजराखि फल भोगवैं, ज्यौं किसान जगमाहिं ।
त्यों चक्रीनृप सुख करै, धर्म बिसारे नाहिं ।।७२।।

नरेन्द्र अथवा जोगीरासा ।

इहिविध राज करै नरनायक, भोगै पुन्य विसालो ।
सुखसागरमैं रमत निरंतर, जात न जानै कालो ।।७३।।

एक दिना सुभ कर्म-सँजोगे, छेमंकर मुनि बंदे ।
देखे श्रीगुरुके पदपंकज, लोचन अलि आनंदे ।।७४।।

तीन प्रदच्छन दे सिर नायौ, करि पूजा थुति कीनी ।
साधु समीप विनय कर बैठ्यौ, पाँयनमैं दिठ दीनी ।।७५।।

गुरु उपदेस्यौ धर्म सिरोमनि, सुनि राजा बैरागे ।
राज रमा वनितादिक जे रस, तेरस बेरस लागे ।।७६।।

मुनि-सूरज-कथनी किरनावलि, लगत भरमबुध भागी ।
भव-तन-भोगसरूप विचारैं, परम-धरम-अनुरागी ।।७७।।

इस संसार महाबनभीतर, भ्रमते ओर न आवै ।
जामन-मरन-जरा-दों दाझ्यौ, जीव महादुख पावै ।।७८।।

कबही जाय नरकथिति भुंजै, छेदन भेदन भारी ।
कबही पसु परजाय धरै तहँ, वध बंधन भयकारी ।।७९।।

सुरगतिमैं परसंपति देखै, रागउदय दुख होई ।
मानुष जोनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई ।।८०।।

कोई इष्टवियोगी बिलखै, कोई असुभ सँजोगी ।
कोइ दीन दारिद्र बिगूचे, कोई तनके रोगी ।।८१।।

किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई ।
किसहीकै दुख बाहर दीखै, किसही उर दुचिताई ।।८२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै ।
खोटी संततिसौं दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै ॥८३॥

पुन्यउदय जिनकै तिनकौं भी, नाहिं सदा सुख साता ।
यों जगवास जथारथ देखत, सब दीखै दुखदाता ॥८४॥

जो संसारविषै सुख हो तो, तीर्थंकर क्यों त्यागैं ।
काहे-कौं सिव-साधन करते, संजमसौं अनुरागैं ॥८५॥

देह अपावन अथिर धिनावन, यामैं सार न कोई ।
सागरके जलसौं सुचि कीजे, तौ भी सुचि नहिं होई ॥८६॥

सात कुधातमई मलमूरति, चामलपेटी सोहै ।
अंतर देखत या सम जगमैं, और अपावन को है ॥८७॥

नव मलद्वार स्त्रवैं निसिवासर, नांव लियैं घिन आवै ।
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां, कौन सुधी सुख पावै ॥८८॥

पोखत तौ दुख दोख करै सब, सोखत सुख उपजावे ।
दुर्जन देहसुभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥८९॥

राचनजोग स्वरूप न याकौ, विरचनजोग सही है ।
यह तन पाय महा तप कीजै, यामैं सार यही है ॥९०॥

भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके ।
बेरस होहिं विपाक समै अति, सेवत लागैं नीके ॥९१॥

वज्र अगनि विषसौं विषधरसौं, ये अधिके दुखदाई ।
धर्मरतनके चोर चपल ये, दुर्गति पंथ सहाई ॥९२॥

ज्यों ज्यों भोग सँजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै ।
तिसना नागनि त्यों त्यों डंकै, लहर जहरकी आवै ॥९३॥

मोह उदय यह जीव अग्यानी, भोग भले कर जानै ।
ज्यों कोई जन खाय धतूरो, सो सब कंचन मानै ॥९४॥

मैं चक्री पद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे ।
तौ भी तनिक भये नहि पूरन, भोग-मनोरथ मेरे ॥९५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज-समाज महा अघकारन, बैर बढ़ावनहारा ।
वेस्यासम लछमी अति चंचल, याकौ कौन पत्यारा ।।९६।।

मोह महा रिपु बैर बिचारा, जगजिय संकट डाले ।
घर काराग्रह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवाले ।।९७।।

सम्यकदरसन-ग्यान-चरन-तप, ये जियके हितकारी ।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चित धारी ।।९८।।

छोड़े चौदह रतन नवौं निधि, अरू छोड़ै संग साथी ।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ।।९९।।

इत्यादिक संपति बहुतेरी,जीरन तिन ज्यों त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुतकौं, राज दियौ बड़भागी ।।१००।।

होय निसल्य अनेक नृपति सँग, भूषन वसन उतारे ।
श्री गुरुचरन धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ।।१०१।।

धन यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धन यह धीरज भारी ।
ऐसी सपंति छोरि बसे बन, तिन पद ढोक हमारी ।।१०२।।

दोहा ।

परिग्रहपोट उतारि सब, लीनौं चारित पंथ ।
निज सुभावमैं थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ।।१०३।।

चौपाई ।

बारहबिध दुद्धर तप करै । दस-लच्छनी धरम अनुसरै ।
पढ़ै अंग-पूरब सुति सार । एकाकी विचरै अनगार ।।१०४।।

ग्रीषमकाल बसै गिरिसीस । बरसामैं तरुतल मुनिईस ।
सीतमास तटिनीतट रहैं । ध्यान अगनिमैं कर्मनि दहैं ।।१०५।।

एक दिना बनमैं थिर काय । जोग दिये ठाड़े मुनिराय ।
कमठजीव अजगर-तन छोरि । उपज्यौ छठे नरक अतिघोर ।।१०६।।

थिति सागर बाईस प्रमान । देखे दुख जानैं भगवान ।
पूरनआयु भोगकर मर्यौ । बनहिं कुरंग भील अवतर्यौ ।।१०७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालसरूप वदन विकराल । वनचर जीवनकौ छयकाल ।
धनुषबान लीये निज पान । भ्रमै मांसलोभी बन थान ॥१०८॥

सो पापी चल आयौ तहां । जोगारूढ खड़े मुनि जहां ।
सत्रुमित्रसौं सम कर भाव । लगे आपमैं सुद्ध सुभाव ॥१०९॥

कुंकुम कादौ महल मसान । कोमल सेज कठिन पाषान ।
कंचन काच दुष्ट अरु दास । जीवन मरन बराबर जास ॥११०॥

निर्ममत्त तनकी सुघि नाहिं । सातौं भय-वरजित उरमाहिं ।
देखि दिगंबर कोप्यौ नीच । कंपित अधर दसनतल भींच ॥१११॥

तान कमान कान लौं लई । तीखन सर मार्‍यौ निरदई ।
मुनिवर धर्मध्यान आराध । दुखमैं धीरज तज्यौ न साध ॥११२॥

दरसन-ग्यान-चरन-तप सार । चारौं आराधन चित धार ।
देहत्याग तब भयो मुनिन्द्र । मध्यम ग्रैवेयिक अहमिंद्र ॥११३॥

तहँ उत्पादसिला निकलंक । हंसतूलजुत रतन पलंक ।
उठ्यौ सेज तजि दीपत काय । अल्पकालमैं जोबन पाय ॥११४॥

देखै दिसि अति विस्मयरूप । महा मनोग विमान अनूप ।
अतुल तेज अहमिंद्र निहार । अवधिज्ञान उपज्यौ तिहिं बार ॥११५॥

जान्यौ सब पूरब-भवभेव । चारित बिरछ फल्यौ सुखदेव ।
अनुपम आठौं दरब सँजोय । रतनाबिंब पूजे थिर होय ॥११६॥

आयौ सुर हर्षित निजथान । महारिद्धि महिमा असमान ।
तीन-भवन-वरती जिनधाम । भावभक्ति नित करै प्रनाम ॥११७॥

तीर्थंकर केवलि-समुदाय । निजथानक-थित पूजे पाय ।
पंचकल्यानक काल विचारि ।प्रनमै हस्तकमल सिरधारि ॥११८॥

दोहा ।

अनाहूत अहमिंद्रगन, आवैं सहज सुभाय ।
धर्मकथा जिनगुन-कथन, करैं सनेह बढ़ाय ॥११९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कबहीं रतन बिमानमैं, कबहीं महल मझार ।
कबहीं बनक्रीड़ा करैं, मिलि अहमिंद्रकुमार ॥१२०॥

और बास निज बासतैं, उत्तम दीसै नाहिं ।
ताहीतैं ते अमरगन, और कहीं नहिं जाहिं ॥१२१॥

प्रीत भरे गुन आगरे, सुभग सोम श्रीमन्त ।
सात धात मलसौं रहित, लेस्या सुकल धरंत ॥१२२॥

सब समान-संपतिधनी, सब मानैं हम इंद्र ।
कला ग्यान विग्यानसम, ऐसे सुर अहमिंद्र ॥१२३॥

सुकल वरन तन-मन-हरन, दोय हाथ परिमान ।
मानौं प्रतिमा फटिककी, महातेज दुतिवान ॥१२४॥

कामदाह उरमैं नहीं, नहिं वनिताकौ राग ।
कल्पलोकके सुर सुखी, असंख्यातवैं भाग ॥१२५॥

सत्ताईस हजार मित, बरस बीति जब जाहिं ।
मानसीक आहारकी, रुचि उपजै मनमाहिं ॥१२६॥

साढ़े तेरह पच्छपर, लेत सुगंध उसास ।
छठी अवनि लौं जिन कही, अवधि-विक्रिया जास ॥१२७॥

सागर सत्ताईस मित, परम आयु तिहिं थान ।
सुभग सुभद्र विमानमैं, यों सुख करै महान ॥१२८॥

चौपाई ।

अब सो भील महादुखदाय । रुद्रध्यानसौं छोड़ी काय ।
मुनिहत्या-पातकतैं मर्यौ । चरम सुभ्रसागरमैं पर्यौ ॥१२९॥

दोहा ।

कथा तहांके कष्टकी, को कर सकै बखान ।
भुगतै सो जानै सही, कै जानै भगवान् ॥१३०॥

दोहा ।

जनमथान सब नरकमैं, अंध अधोमुख जौन ।
घंटाकार घिनावनी, दुसह बास दुखभौन ॥१३१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिनमैं उपजैं नारकी, तल सिर ऊपर पाय ।
विषम वज्र कंटकमई, परैं भूमिपर आय ।।१३२।।

जो विषैल बीछू सहस, लगे देह दुख होय ।
नरक धराके परसतैं, सरिस वेदना सोय ।।१३३।।

तहां परत परवान अति, हाहा करते एम ।
ऊँचे उछलैं नारकी, तये तबा तिल जेम ।।१३४।।

सोरठा ।

नरक सातवैं माहिं, उछलन जोजन पांचसौ ।
और जिनागम माहिं, जथाजोग सब जानियो ।।१३५।।

दोहा ।

फेर आन भूपर परै, और कहां उड़िं जाहि ।
छिन्न भिन्न तन अति दुखित, लोट लोट बिललाहि ।।१३६।।

सब दिसि देखि अपूर्व थल, चकित चित्त भयवान ।
मन सोचै मैं कौन हूं, पर्यौ कहां मैं आन ।।१३७।।

कौन भयानक भूमि यह, सब दुख-थानक निंद ।
रुद्ररूप ये कौन हैं, निठुर नारकी वृंद ।।१३८।।

काले बरन कराल मुख, गुंजा लोचन धार ।
हुंडक डील डरावने, करैं मार ही मार ।।१३९।।

सुजन न कोई दिठ परै, सरन न सेवक कोय ।
ह्यां सो कछु सूझै नहीं, जासौं छिन सुख होय ।।१४०।।

होत विभंगा अवधि तब, निजपरकौं दुखकार ।
नरक कूपमैं आपकौं, पर्यौ जान निरधार ।।१४१।।

पूरब पाप-कलाप सब, आप जाप कर लेय ।
तब विलापकी ताप तप, पश्चात्ताप करेय ।।१४२।।

मैं मानुष परजाय धरि, धन-जोबन-मदलीन ।
अधम काज ऐसे किये, नरक-बास जिन दीन ।।१४३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरसोंसम सुखहेत तब, भयौ लंपटी जान ।
ताहीकौ अब फल लग्यौ, यह दुख मेरु समान ॥१४४॥

कंदमूल मद मांस मधु, और अभच्छ अनेक ।
अच्छन-बस भच्छन किये, अटक न मानी एक ॥१४५॥

जल थल नभचारी विबिध, बिलवासी बहु जीव ।
मैं पापी अपराध बिन, मारे दीन अतीव ॥१४६॥

नगरदाह कीनौं निठुर, गाम जलाये जान ।
अटवीमैं दीनी अगनि, हिंसा कर सुख मान ॥१४७॥

अपने इंद्रीलोभकौं, बोल्यौ मृषा मलीन ।
कलपित ग्रंथ बनायकै, बहकाये बहु दीन ॥१४८॥

दाव घात परपंचसौं, पर लछमी हर लीय ।
छलबल हठबल दरबबल, परवनिता बस कीय ॥१४९॥

बढ़ी परिग्रहपोट सिर, घटी न घटकी चाह ।
ज्यों ईंधनके जोगसौं, अगनि करै अतिदाह ॥१५०॥

बिन छान्यौ पानी पियौ, निसि भुंज्यौ अविचारि ।
देवदरब खायै सही, रुद्रध्यान उर धारि ॥१५१॥

कीनी सेव कुदेवकी, कुगुरुनकौं गुरु मानि ।
तिनहींके उपदेशसौं, पशु होमैं हित जानि ॥१५२॥

दियौ न उत्तमदान मैं, लियौ न संजम भार ।
पियौ मूढ़ मिथ्यातमद, कियौ न तप जगसार ॥१५३॥

जो धर्मीजन दयाकरि, दीनी सीख निहोर ।
मैं तिनसौं रिस करि अधम, भाखे बचन कठोर ॥१५४॥

करी कमाई परजनम, सो आई मुझ तीर ।
हा हा अब कैसे धरूं, नरक धरामैं धीर ॥१५५॥

दुर्लभ नरभव पायकैं, केई पुरुष प्रधान ।
तपकरि साधैं सुरग सिव, मैं अभागि यह थान ॥१५६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूरब संतन यों कही, करनी चालै लार ।
सौ अब आँखन देखिये, तब न करी निरधार ।।१५७।।

जिस कुटुंबके हेत मैं, कीनैं बहुबिध पाप ।
ते सब साथी बीछड़े, पर्यौ नरकमैं आप ।।१५८।।

मेरी लछमी खानकौं, सीरी भये अनेक ।
अब इस बिपत बिलापमैं, कोउ न दीखै एक ।।१५९।।

सारस सर-वर तजि गये, सूखो नीर निराट ।
फलबिन बिरख बिलोककै, पंछी लागे बाट ।।१६०।।

पंचकरन-पोषन अरथ, अनरथ किये अपार ।
ते रिपु ज्यों न्यारे भये, मोहि नरकमैं डार ।।१६१।।

तब तिलभर दुख सहनकौं, हुतो अधीरज भाव ।
अब ये कैसे दुसह दुख, भरिहौं दीरघ आव ।।१६२।।

अघ बैरीके बस पर्यौ, कहा करूं कित जाउं ।
सुनै कौन पूछूं किसे, सरन कौन इस ठाउं ।।१६३।।

यहां कछू दुख हतनकौ, उक्त उपाव न भूर ।
थिति बिन बिपत-समुद्र यह, कब तिरहौं तट दूर ।।१६४।।

ऐसी चिंता करत हू, बढ़ै बेदना एम ।
घीव तेलके जोगतैं, पावक प्रजुलै जेम ।।१६५।।

सोरठा ।

इहिबिध पूरब पाप, प्रथम नारकी सुधि करैं ।
दुख उपजावन जाप, होय विभंगा अवधितैं ।।१६६।।

दोहा ।

तब ही नारकि निर्दई, नयौ नारकी देख ।
धाय धाय मारन उठैं, महादुष्ट दुरभेख ।।१६७।।

कब क्रोधी कलही सकल, सबके नेत्र फुलिंग ।
दुःख देनकौं अति निपुन, निठुर नपुंसकलिंग ।।१६८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुंत कृपान कमान सर, सकती मुगदर दंड ।
इत्यादिक आयुध विबिध, लिये हाथ परचंड ॥१६९॥

कहि कठोर दुर्वचन बहु, तिल तिल खंडैं काय ।
सो तबही ततकाल तन, पारे-वत मिल जाय ॥१७०॥

काँटेकर छेदैं चरन, भेदैं मरम विचारि ।
अस्थिजाल चूरन करैं, कुचलैं खाल उपारि ॥१७१॥

चीरैं करवत काठ ज्यों, फारैं पकरि कुठार ।
तोड़ैं अंतरमालिका, अंतर उदर बिदार ॥१७२॥

पेलैं कोल्हू मेलकै, पीसैं घरटी घाल ।
तावैं ताते तेलमैं, दहैं दहन परजाल ॥१७३॥

पकरि पांय पटकैं पुहुमि, झटकि परसपर लेहिं ।
कंटक सेज सुबावहीं, सूलीपर धरि देहिं ॥१७४॥

घसैं सकंटक रूखसौं, बैतरनी ले जाहिं ।
घायल घेरि घसीटिए, किंचित करुना नाहिं ॥१७५॥

केई रक्त चुवाव तन, विहबल भाजैं ताम ।
पर्वत अन्तर जायके, करैं बैठि विसराम ॥१७६॥

तहां भयानक नारकी, धारि विक्रिया भेख ।
बाघ सिंह अहि रूपसौं, दारैं देह विसेख ॥१७७॥

केई करसौं पांय गहि, गिरसौं देहिं गिराय ।
परैं आन दुर्भूमिपर, खंड खंड हो जाय ॥१७८॥

दुखसौं कायर चित्तकरि, ढूँढ़ैं सरन सहाय ।
वे अति निर्दय घातकी, यह अति दीन घिघाय ॥१७९॥

व्रण-वेदन नीकी करैं, ऐसे करि विस्वास ।
सींचैं खारे नीरसौं, जो अति उपजै त्रास ॥१८०॥

केई जकरि जँजीरसौं, खैंचि थंभ अति बांधि ।
सुध कराय अब मारिये, नाना आयुध साधि ॥१८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन उद्धत अभिमानसौं, कीनैं परभव पाप ।
तपत लोह-आसन विषैं, त्रास दिखावैं थाप ॥१८२॥

ताती पुतली लोहकी, लाय लगावैं अंग ।
प्रीत करी जिन पूर्वभव, पर कामिनिके संग ॥१८३॥

लोचनदोषी जानिकै, लोचन लेहिं निकाल ।
मदिरापानी पुरुषकौं, प्यावैं तांबो गाल ॥१८४॥

जिन अंगनसौं अघ किये, तेई छेदे जाहिं ।
पल-भच्छन के पापतैं, तोड़ि तोड़ि तन खाहिं ॥१८५॥

केई पूरब बैरके, याद दिवावैं नाम ।
कह दुर्वचन अनेक बिध, करैं कोप संग्राम ॥१८६॥

भये विक्रिया देहसौं, बहुविध आयुधजात ।
तिनहीसौं अति रिस भरे, करैं परस्पर घात ॥१८७॥

सिथिल होय चिर युद्धतैं, दीन नारकी जाम ।
हिंसानंदी असुर दुठ, आन भिरावैं ताम ॥१८८॥

सोरठा ।

तृतिय नरक परजंत, असुरादिक दुख देत हैं ।
भाख्यौ जिनसिद्धंत, असुरगमन आगे नहीं ॥१८९॥

दोहा ।

इहिबिध नरक-निवासमैं, चैन एकपल नाहिं ।
तपैं निरंतर नारकी, दुख दावानल माहिं ॥१९०॥

मार मार सुनिये सदा, छेत्र महा दुरगंध ।
बहै बात असुहावनी, असुध छेत्र संबंध ॥१९१॥

तीन लोककौ नाज सब, जो भच्छन कर लेय ।
तौहू भूख न उपसमै, कौन एक कन देय ॥१९२॥

सागरके जलसौं जहां, पीवत प्यास न जाय ।
लहै न पानी बूंदभर, दहै निरंतर काय ॥१९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाय-पित्त-कफ-जनित जे, रोगजात जावंत ।
तिन सबहीकौ नरकमैं, उदय कह्यौ भगवंत ॥१९४॥

कटुतुंबी सौ कटुक रस, करवतकी सी फांस ।
जिनकी मृत मंजारसौं, अधिक देहदुरबास ॥१९५॥

जोजन लाख प्रमान जहँ, लोह-पिंड गल जाय ।
ऐसी ही अति उसनता, ऐसी सीत सुभाय ॥१९६॥

अडिल्ल छंद ।

पंक-प्रभा परजंत उसनता अति कही ।
धूम-प्रभामैं सीत उसन दोनौं सही ॥
छठी सातमी भूमि न केवल सीत है ।
ताकी उपमा नाहिं महा विपरीत है ॥१९७॥

दोहा ।

स्वान स्यार मंजारकी, पड़ी कलेवर-रास ।
मास वसा अरु रुधिरकौ, कादौ जहां कुबास ॥१९८॥

ठाम ठाम असुहावने, सेंभल तरुवर भूर ।
पैनैं दुखदैनैं विकट, कंटक-कलित करूर ॥१९९॥

और जहां असिपत्र बन, भीम तरोवर खेत ।
जिनके दल तरवारसे, लगत घाव करदेत ॥२००॥

वैतरिनी सरिता समल, लोहित लहर भयान ।
बहै खार सोनित भरी, मांसकीच घिन घान ॥२०१॥

पंछी वायस गीधगन, लोहतुंडसौं जेह ।
मरम विदारैं दुख करैं, चूंटै चहुँदिस देह ॥२०२॥

पंचेंद्री मनकौं महा, जे दुखदायक जोग ।
ते सब नरक-निकेतमैं, एकपिंड अमनोग ॥२०३॥

कथा अपार कलेसकी, कहै कहां लौं कोय ।
कोड़ जीभसौं बरनिये, तऊ न पूरी होय ॥२०४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागरबंध प्रमानथिति, छिनछिन तीखन त्रास ।
ये दुख देखैं नारकी, परवस परे निवास ।।२०५।।

जैसी परवस बेदना, सहै जीव बहु भाय ।
स्ववस सहै जो अंस भी, तौ भवजल तिरजाय ।।२०६।।

ऐसे नरकहिं नारकी, भयौ भील दुठ भाव ।
सागर सत्ताईसकी, धारी मध्यम आव ।।२०७।।

सागर काल प्रमान अब, बरनौं औसर पाय ।
जिनसौं नरकनिवासकी, थिति सब जानी जाय ।।२०८।।

चौपाई ।

पहले तीन पल्यके भेव । एक चित्तकरि सो सुन लेव ।
जिनसौं सागर उपजै सही । जथारीत जिनसासन कही ।।२०९।।

सोरठा ।

प्रथम पल्य ब्योहार, दुतिय नाम उद्धार भन ।
अर्धा त्रितिय विचार, अब इनकौ विस्तार सुन ।।२१०।।

चौपाई ।

पहले गोल कूप कलपिये । जोजन बड़े मान थरपिये ।
इतनौ ही करिये गंभीर । बुधिबल ताहि भरौ नर धीर ।।२११।।

सात दिवसके भीतर जेह । जनैं भेड़के बालक लेह ।
उत्तम भोगभूमिके जान । तिनके रोमअग्र मनआन ।।२१२।।

ऐसे सूच्छम करिये सोय । फेरि खंड जिनकौ नहिं होय ।
तिन सौं महाकूप वह भरौ । बारंबार कूट दिढ़ करौ ।।२१३।।

तिन रोमनकी संख्या जान । पैंतालीस अंक परवान ।
ते श्रीजिनसासनमैं कहे । कर प्रतीत जैनी सरदहे ।।२१४।।

चामर छंद ।

चार एक तीन चार पांच दो छ तीन ले ।
सुन्न तीन सुन्न आठ दोय अंक सुन्न दे ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन एक सात सात सात चार नौ करौ ।
पांच एक दोय एक नौ समार दो धरौ ।।२१५।।

दोहा ।

सात बीस ये अंक लिखि, और अठारह सुन्न ।
प्रथम पल्यके रोमकी, यह संख्या परिपुन्न ।।२१६।।

चौपाई ।

सौ सौ बरस बीत जब जाहिं । एक एक काढ़ौ यामाहिं ।
ऐसी बिध सब करते सोय । कूप उदर जब खाली होय ।।२१७।।

जो कुछ लगै काल परवान । सो ब्योहार पल्य उरआन ।
प्रथम पल्य सबतैं लघुरूप । बीजभूत भाख्यौ जिनभूप ।।२१८।।

दोहा ।

संख्या कारन जिन कह्यौ, और न यासौं काज ।
दुतिय पल्य विवरन सुनों, जो भाख्यौ जिनराज ।।२१९।।

चौपाई ।

पूरवकथित रोम सब धरौ । तिनके अंस कल्पना करौ ।
बरस असंख कोटिके जिते । समय होहिं आतम परिमिते ।।२२०।।

एक एकके तावत मान । करौ भाग विकलप मन आन ।
याबिध ठान रोमकी रास । समय समय प्रति एक निकास ।।२२१।।

जितनौं काल होय सब येह । सो उद्धार पल्य सुन लेह ।
याकै रोमनसौं परवान । दीपोदधिकी संख्या जान ।।२२२।।

दोहा ।

कोड़ाकोड़ि पचीसके, पल्य रोम जावंत ।
तितनैं दीप समुद्र सब, बरनै जैनसिधंत ।।२२३।।

चौपाई ।

अब सुन त्रितिय पल्यकी कथा । श्रीजिनसासन बरनी जथा ।
दुतिय पल्यके अमित अपार । रोम अंस लीजै निर्धार ।।२२४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक एकके भाग प्रमान । करि सौ बरस समय परवान ।
इहिबिध रासि होय फिर एह । समय समय प्रति लीजै तेह ॥२२५॥

ऐसे करत लगै जो काल । सोई अर्धापल्य विसाल ।
करमनकी थिति यासौं जान । यह उत्कृष्ट कही भगवान ॥२२६॥

दोहा ।

प्रथम पल्य संख्यातमित, दुतिय असंख्यप्रमान ।
असंख्यातगुन तीसरौ, लिख्यौ जिनागम जान ॥२२७॥

इन सब तीनौं पल्यमैं, अद्धापल्य महान ।
दस कोड़ा कोड़ी गये, अद्धासागर ठान ॥२२८॥

इस ही अद्धासिंधुसौं, पुन्यपाप परभाव ।
संसारीजन भोगवैं, सुरग नरककी आव ॥२२९॥

ऐसे दीरघ काल लौं, नरक सातवैं थान ।
कमठ जीव दुख भोगवै, पर्यौ कर्मवस आन ॥२३०॥

धिक धिक विषय-कषाय मल, ये बैरी जगमाहिं ।
ये ही मोहित जीवकौं, अवसि नरक ले जाहिं ॥२३१॥

धर्म पदारथ धन्य जग, जा पटतर कछु नाहिं ।
दुर्गतिवास बचायकै, धरै सुरगसिवमाहिं ॥२३२॥

यही जान जिनधर्मकौं, सेवो बुद्धिविशाल ।
मन तन वचन लगायकैं, तिहुँपन तीनौं काल ॥२३३॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां वज्रनाभअहमिन्द्रसुखभिल्लनरकदु:खवर्णनं
नाम तृतीयोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथा अधिकार

आनन्दराय इन्द्रपद प्राप्ति वर्णन ।

सोरठा

मारूथल संसार, वामानंदन कलपतरु ।
वांछित फल दातार, सुखकामी सेवो सदा ।।१।।

चौपाई ।

इसही जंबूदीप मझार । भरतखंड दच्छिन दिसि सार ।।
कौसलदेस बसै अभिराम । नगर अजोध्या उत्तम ठाम ।।२।।

आरजखंड माहिं परधान । मध्यभाग राजै सुभथान ।।
गढ़ गोपुर खाई गृहपांति । घनबनसौं सोहै बहुभांति ।।३।।

ऊंचे जिनमंदिर मनहरैं । कंचन कलस धुजा फरहरैं ।।
वज्रबाहु भूपति तिहिं थान । वर-इख्वाकवंस-नभ-भान ।।४।।

जैनधर्म पाले बढ़भाग । जिनपद-कमलनि मधुप सराग ।।
प्रभाकरी तिय ताघर सती । जीती जिन रंभा-रति-रती ।।५।।

दोहा ।

यथा हंसके वंसकौं, चाल न सिखवै कोय ।
त्यों कुलीन नर-नारिकै, सहज नमन-गुन होय ।।६।।

चौपाई ।

वह अहमिंद्र तहातैं चयौ । तिनकै सुदिन पुत्र सो भयौ ।।
नांव धर्यौ आनंदकुमार । अतुल तेज सब लच्छन सार ।।७।।

सुभग सोम श्रीवंत महान । बल-वीरज-धीरजगुनथान ।।
नरनारी-मन-मानिक-चोर । देखत नयन रहैं जा ओर ।।८।।

जाके सुगुन सेस कह थकै । और कौन बरनन कर सकै ।।
जोबनवंत जनक तिस देख । ब्याह-महोत्सव कियौ विसेख ।।९।।

परनी राजसुता बहु भाय । जिनकी छबि बरनी नहिं जाय ।।
क्रमसौं कुमर पितापद पाय । बलसौं बस कीये बहु राय ।।१०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

जोबन वय संपति बड़ी, मिल्यौ सकल सुखजोग ।
'महामंडली' पद लह्यौ, पूरब-पुन्य-नियोग ।।११।।

चौपाई ।

अब सुन आठ जातिके भूप । जिनकौ जिनमत कह्यौ सरूप ।।
कोटि ग्रामकौ अधिपति होय । राजा नाम कहावै सोय ।।१२।।

नवैं पांचसौ राजा जाहि । अधिराजा नृप कहिये ताहि ।।
सहस राय जिस मानैं आन । महाराज राजा वह जान ।।१३।।

दोय सहस नृप नवैं असेस । मंडलीक वह अर्ध नरेस ।।
चार सहस जिस पूजैं पाय । सोई मंडलीक नरराय ।।१४।।

आठ सहस भूपतिकौ ईस । मंडलीक सो महा महीस ।।
सोलह सहस नवैं भूपाल । सो अधचक्री पुन्यविसाल ।।१५।।

सहस बतीस आन जिस बहैं । ताहि सकलचक्री बुध कहैं ।।
इनमैं श्री आनंद नरेस । महामंडली पद परमेस ।।१६।।

सोरठा ।

आठ सहस सुखहेत, नृप नछत्र सेवैं सदा ।
कीरति-किरन-समेत, सोहै नरपतिचंद्रमा ।।१७।।

चौपाई ।

एक दिना आनंद महीस । बैठ्यौ सभा सिंहासनसीस ।।
मंत्री तहां स्वामिहित नाम । कहै विवेकी सुवचन ताम ।।१८।।

स्वामी यह वसंत रितुराज । सब जन करैं महोच्छवकाज ।।
नंदीसुर-व्रत अवसर येह । करिये प्रभु-पूजा जिन गेह ।।१९।।

दोहा ।

जिनपूजाकी भावना, सब दुखहरन-उपाय ।
करते जो फल संपजै, सो बरन्यौ किमि जाय ।।२१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

सुनि राजा मंत्री उपदेस । नगर महोच्छव कियौ विसेस ।।
करि सनान जिनमंदिर जाय । जैनबिंब पूजे बिहसाय ।।२२।।

बहुबिध पूजा दरब मनोग । धरे आन जिन-पूजन जोग ।।
भाव भक्तिसौं मंगल ठयौ । राजा-के मन संसय भयौ ।।२३।।

विपुलमती मुनिवर तिहिं थान । दरसन कारन आये जान ।।
तिनैं पूजि नृप पूछै येह । भो मुनींद्र मुझ मन संदेह ।।२४।।

दोहा ।

प्रतिमा धात पखानकी, प्रगट अचेतन अंग ।
पूजक जनकौं पुन्यफल, क्यों कर देय अभंग ।।२५।।

तुम जगमैं संसय-तिमिर, दूरकरन रविरूप ।
यह मुझ भरम मिटाइये, करै बीनती भूप ।।२६।।

तब ग्यानी गनधर कहैं, समाधान सुन राय ।
भवि-जनकौं-प्रतिमा भगति, महापुन्य-फलदाय ।।२७।।

भाव सुभासुभ जीवके, उपजैं कारन पाय ।
पुन्य पाप तिनसौं बंधै, यों भाष्यौ जिनराय ।।२८।।

कुसुम बरनकौ जोग लहि, जैसे फटिक पखान ।
अरुन-स्याम दुतिकौं धरै, यही जीवकी बान ।।२९।।

सो कारन है दोय बिध, अंतरंग बहिरंग ।।
तिनके ही उर आय है, जे समझैं सरवंग ।।३०।।

बाहिज कारन जानियौ, अंतरंगकौ हेत ।
सोई अंतरभाव नित, कर्मबंधकौं देत ।।३१।।

जिन परिनामन पुन्य बहु, बधैं अन्यथा नाहिं ।
तिन भावनकौं निमित है, जिनप्रतिमा जगमाहिं ।।३२।।

वीतराग मुद्रा निरखि, सुधि आवै भगवान ।
वही भाव कारन महा, पुन्यबंधकौ जान ।।३३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग-द्वेष-वर्जित अमल, सुखदुखदाता नाहिं ।
दर्पनवत भगवान हैं, यह आनौं उरमाहिं ।।३४।।

तिनकौ चिंतन ध्यान जप, थुति पूजादि विधान ।।
सुफल फलै निज भावसौं, ह्वै मुकती सुखदान ।।३५।।

जैसे गुन प्रभुके कहे, ते जिन मुद्रामाहिं ।
थिरसरूप रागादिबिन, भूषन आयुध नाहिं ।।३६।।

जद्यपि सिल्पीकृत कृतम, जिनवरबिम्ब अचेत ।
तदपि सही अंतरविषैं, सुभ भावनकौं हेत ।।३७।।

और एक दिष्टांत अब, सुन अवनीपति सोय ।
जियके उर दृष्टांतसौं, संसै रहै न कोय ।।३८।।

चौपाई ।

गनिका धरी चितामैं जाय । बिसनी पुरुष देखि पछताय ।।
जो जीवत मुझ मिलतौ जोग । तो मैं करतौ वांछित भोग ।।३९।।

स्वान कहै उर क्यों यह दही । मैं निज भच्छन करतौ सही ।।
पुनि तिहि देख कहैं मुनिराय । क्यों न कियौ तप यह तन पाय ।।४०।।

इहि बिध देखि अचेतन अंग । उपजैं भाव पाय परसंग ।।
तिन ही भावनके अनुसार । लाग्यौ फल तिनकौं तिहिं बार ।।४१।।

दोहा ।

व्यसनी नर नरकहिं गयौ, लह्यौ भूखदुख स्वान ।।
साधु सुरग पहुँचे सही, भावनकौ फल जान ।।४२।।

चौपाई ।

यों जिनबिंब अचेतन-रूप । सुखदायक तुम जानो भूप ।।
कारनसम कारज संपजै । यामैं बुध संसै नहिं भजै ।।४३।।

दोहा ।

जैसैं चिंतामनि रतन, मन-वांछित दातार ।
तथा अचेतन बिंब यह, वांछा पूरनहार ।।४४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्यों जांचत सुख कलपतरु; दानी जनकौं देय ।।
त्यों अचेत यह देत है, पूजककौं सुख श्रेय ।।४५।।

मनि मंत्रादिक ओषधी, हैं प्रतच्छ जड़रूप ।
विष रोगादिककौं हरैं, त्यों यह अघहर भूप ।।४६।।

जड़-सरूपकौ पूज पद, प्रगट देखिये लोय ।
राजपत्र सिर धारिये, मुद्राअंकित होय ।।४७।।

राजपत्र सिर धारिये, राजाकौ भय मानि ।
जिनवर-मुद्रा पूजिये, पातक-कौ डर जानि ।।४८।।

प्रतिमा पूजन चिंतवन, दरसन आदि विधान ।
हैं प्रमान तिहुँ कालमैं, तीन लोकमैं जान ।।४९।।

जे प्रतिमा पूजैं नहीं, निंदा करैं अजान ।
तीन लोक तिहुंकालमैं, तिनसम अधम न आन ।।५०।।

जे प्रतिमा पूजैं सदा, भाव-भगति-विधि-सुद्धि ।
तिनकौ जनम सराहिये, धन तिनकी सद्बुद्धि ।।५१।।

इत्यादिक उपदेस सुनि, आई उर परतीत ।
जिन-प्रतिमा पूजन विषैं, धरी राय दिढ़ प्रीत ।।५२।।

चौपाई ।

तिस औसर मुनि बरनै ताम । तीन भवन-वरती जिनधाम ।।
भानु-विमान विषै जिनगेह । सो पहले बरनै धरि नेह ।।५३।।

रतनमई प्रतिमा जगमगै । कोट भानु छबि छीनी लगै ।।
निरुपम रचना विविध विसाल । सूरजदेव नमैं तिहुँ काल ।।५४।।

सुन आनंदौ आनँदराय । विकसत आनन अंग न माय ।।
जब संदेहसल्य निरबरै ।तब अवस्य उर सुख विस्तरै ।।५५।।

प्रात सांझ मंदिर चढ़ि सोय । अर्घ देय रवि सम्मुख होय ।।
करि जिनबिंबनकौ मन ध्यान । अस्तुति करै राग मन आन ।।५६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रवि-विमान मनि कंचनमई । निरमापो अद्भुत छबि छई ।।
जैन भवन करि मंडित सोय ।देखत जनमन अचरज होय ।।५७।।

पूजा तहां करै नित राय । महा महोच्छव हर्ष बढ़ाय ।।
प्रतिदिन देय दया उर आन । दीन दुखित जनकौं बहु दान ।।५८ ।।

यह नितनेम करै भूपाल । चली नगरमैं सोई चाल ।।
सब सूरजकौं करैं प्रनाम । देखादेखि चल्यौ मत ताम ।।५९।।

समझैं नहीं मूढ़ परनये । भानुउपासक तबसौं भये ।।
जो महंत नर कारज करै । ताकी रीत जगत आचरै ।।६०।।

यों बहु पुन्य करै भूपाल । सुखमैं जात न जान्यौ काल ।।
एक दिना निजसभा नरेस । निबसै मानौं सुरग-सुरेस ।।६१।।

धवल केस देख्यौ निज सीस । मन कंप्यौ सोचै नरईस ।।
जाहि देखि मन उत्सव घटै । कामी जीवनकौ उर फटै ।।६२।।

सो लखि सेत बाल भूपाल । भोग उदास भये ततकाल ।।
जगतरीति सब अथिर असार । चिंतै चितमैं मोह निवार ।।६३।।

बाल अवस्था भई बितीत । तरुनाई आई निज रीत ।।
सो अब बीती जरा पसाय । मरन दिवस यों पहुंचे आय ।।६४।।

बालक काया कूँपल सोय । पत्ररूप जोबनमैं होय ।।
पाको पात-जरा तन करै । काल बयारि चलत झर परै ।।६५।।

कोई गर्भमाहिं खिर जाय । कोई जनमत छोड़ै काय ।।
कोई बाल दसा धरि मरै । तरुन अवस्था तन परिहरै ।।६६।।

मरन दिवसकौ नेम न कोय । यातैं कछु सुधि परै न लोय ।।
एक नेम यह तो परमान । जन्म धरै सो मरै निदान ।।६७।।

महापुरुष उपजे बड़भागि । सब परलोक गये तन त्यागि ।।
संसारी जन अपनी बार । पूरब उदै करै अनुसार ।।६८।।

परवत-पतित नदीके न्याय । छिनही छिन थिति बीती जाय ।।
राग अंध प्रानी जगमाहिं । भोगमगन कछु सोचै नाहिं ।।६९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतकाल जब पहुंचै आय । कहा होय जो तब पछताय ।।
पानी पहले बंधै जो पाल । वही काम आवै जल-काल ।।७०।।

यही जान आतम हित हेत । करैं विलंब न संत सुचेत ।।
आज काल जे करत रहाहिं । ते अजान पीछे पछताहिं ।।७१।।

रात दिवस घटमाल सुभाव । भरि भरि जल जीवनकी आव ।।
सूरज चांद बैल ये दोय । काल रँहट नित फेरैं सोय ।।७२।।

दोहा ।

राजा राना छत्रपति, हाथिनके असवार ।
मरना सबकौं एक दिन, अपनी अपनी बार ।।७३।।

दलबल देई देवता, मात पिता परिवार ।
मरती बिरियाँ जीवकौं, कोउ न राखनहार ।।७४।।

दाम बिना निर्धन दुखी, तिसना वस धनवान ।
कहूँ न सुख संसारमैं, सब जग देख्यौ छान ।।७५।।

आप अकेला अवतरै, मरै अकेला होय ।
यों कबही इस जीवका, साथी सगा न कोय ।।७६।।

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय ।
घर सम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ।।७७।।

दिपै चाम-चादर-मढ़ी, हाड़ पींजरा देह ।
भीतर या सम जगतमैं, और नहीं घिनगेह ।।७८।।

सोरठा ।

मोहनींदके जोर, जगवासी घूमै सदा ।
कर्मचोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुधि नहीं ।।७९।।

सतगुरु देहिं जगाय, मोहनींद जब उपसमै ।
तब कछु बनै उपाय, कर्मचोर आवत रुकैं ।।८०।।

दोहा ।

ग्यान दीप तप तेल भरि, घर सोधै भ्रम छोर ।
याबिध बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर ।।८१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच महाव्रत-संचरन, समिति पंच परकार ।
प्रबल पंच इंद्री-विजय, धार निर्जरा सार ।।८२।।

चौदह राजु उतंग नभ, लोकपुरुष संठान ।
तामैं जीव अनादिसौं, भरमत है बिन ग्यान ।।८३।।

जाँचै सुरतरु देहिं सुख, चिंतत चिंतारैन ।
बिन जाँचैं बिन चिंतवैं, धर्म सकल सुख-दैन ।।८४।।

धन-कन-कंचन-राजसुख, सबै सुलभ करि जान ।
दुर्लभ है संसारमैं, एक जथारथ ग्यान ।।८५।।

चौपाई ।

इहिबिध भूप भावना भाय । हित उद्यम चिंत्यौ मन लाय ।।
सबसौं मोह ममत निरवारि । उठ्यौ धीर धीरज उर धारि ।।८६।।

जेठे सुतकौं दीनौं राज । आप चल्यौ सिव-साधन काज ।।
सागरदत्त मुनीसुर पास । संजम लियौ तजी जगआस ।।८७।।

घनैं भूप भूपतिके संग । धरे महाव्रत निर्भय अंग ।।
अब आनंद महामुनि धीर । बननिवास बिचरै बन बीर ।।८८।।

दुद्धर तप बारह बिध करै । दुबिध संग-ममता परिहरै ।।
तिनके नाम कहूं कछु धार । जिनसासन जिनकौ विस्तार ।।८९।।

प्रथम महातप अनसन नाम । दूजौ ऊनोदर गुनधाम ।।
तीजौ है व्रतपरिसंख्यान । रसपरित्याग चतुर्थम मान ।।९०।।

पंचम भिन-सयनासन सार । कायकलेस छठौ अविकार ।।
यह षटबिध बाहज तप जान । अब अन्तर तप सुनौ सुजान ।।९१।।

पहले प्राछित विनय दुतीय । वैयाव्रत तीजौ गन लीय ।।
चौथौ अन्तरंग सिज्झाय । पंचम तप व्युत्सर्ग बताय ।।९२।।

पष्ठम ध्यान हरै सब खेद । ये अन्तर तपके सब भेद ।।
अब इनकौ संछेप सरूप । सुनौ संत तजि भाव विरूप ।।९३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनके सुनत बँधै सुभध्यान । सेवत पद लहिये निरवान ।।
तप बिन तीनकाल तिहुँ लोय । कर्मनास कबही नहिं होय ।।९४।।

दिनसौं लेय बरस लगि करै । चार प्रकार असन परिहरै ।।
राग-रोग-निर्दलन उपाय । सो अनसन भाख्यौ जिनराय ।।९५।।

पौन अर्ध चौथाई टेक । एक ग्रास अथवा कन एक ।।
ऐसी बिध जो भोजन लेत । ऊनोदर आलस हर लेत ।।९६।।

जैसी प्रथम प्रतिग्या करै । ताही बिध भोजन आदरै ।।
सो कहिये व्रत-परि-संख्यान । आसाव्याधि-विनासन जान ।।९७।।

लवनादिक रस छांरि उपाध । नीरस भोजन भुंजे साध ।।
रस-परित्याग कहावै एम । इंद्रिय-मद नासन यह नेम ।।९८।।

सून्यगेह गिरि गुफा मसान । नारि-नपुंसक-वर्जित थान ।।
बसै भिन्न-सयनासन सोय । यासौं सिद्धि ध्यानकी होय ।।९९।।

ग्रीषम काल बसै गिरि-सीस । पावसमैं तरुवर-तल दीस ।।
सीत-समय तटिनी-तट रहै । काय-कलेस कहावै यहै ।।१००।।

दोहा ।

या तपके आचरनसौं, सहनसील मुनि होय ।
अब अन्तर-तप-भेद छह, कहूं जिनागम जोय ।।१०१।।

चौपाई ।

जो प्रमादवस लागै दोष । सोधै ताहि छोरि छल रोष ।।
आचारज वानी अनुसार । यही प्रथम प्राछित तप सार ।।१०२।।

जे गुनजेठे साधु महंत । दरसन ग्यानी चारितवंत ।।
तिनकी विनय करै मनलाय । विनय नाम तप सो सुखदाय ।।१०३।।

रोगादिक पीड़ित अविलोय । बाल बिरध मुनिवर जो होय ।।
सेव करै निजसंजम राखि । सो वैयाव्रत आगमसाखि ।।१०४।।

सकतिसमान सकल गुन ठाठ । करै साधु परमागम-पाठ ।।
परमोत्तम तप सो सिज्झाय । जासौं सब संसय मिट जाय ।।१०५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निज सरीर ममता परिहरे । काउसग्ग मुद्रा दिढ़ धरै ।।
अन्तर बाहर परिग्रह छार । सोई तप व्युत्सर्ग उदार ।।१०६।।

आरत रौद्र निवारै सोय । धर्म सकल ध्यावै थिर होय ।।
जहां सकल चिंता मिट जाहिं । वही ध्यान-तप जिनमत माहिं ।।१०७।।

दोहा ।

यह बारह बिध तप विषम, तपै महामुनि धीर ।।
सहै परीषह बीस दो, ते अब बरनौं बीर ।।१०८।।

छप्पय ।

छुधा तृषा हिम उसन, डंस मंसक दुखभारी ।
निरावरन तन अरति, खेद उपजावन नारी ।।
चरिया आसन सयन, दुष्ट वायक वध बंधन ।
जांचै नहीं अलाभ रोग, तिन-फरस निबंधन ।।
मल जनित मान-सनमान वस, प्रग्या और अग्यान कर ।।
दरसन मलीन बाईस सब, साधु परीषह जान नर ।।१०९।।

दोहा ।

सूत्र पाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम ।।
इनके दुख जे मुनि सहैं, तिनप्रति सदा प्रनाम ।।११०।।

सोमावती छंद ।

अनसन ऊनोदर तप पोषत, पाखमास दिन बीत गये हैं ।
जोग न बनै जोग भिच्छाबिधि, सूख अंग सब सिथिल भये हैं ।
तब बहु दुसह भूखकी वेदन, सहत साधु नहिं नेक नये हैं ।
तिनके चरनकमल प्रति दिन दिन, हाथ जोरि हम सीस ठये हैं ।।१११।।

पराधीन मुनिवरकी भिच्छा, परघर लेहिं कहैं कछु नाहीं ।
प्रकृति-विरोधि पारना भुंजत, बढ़त प्यासकी त्रास तहांहीं ।
ग्रीषमकाल पित्त अति कोपै, लोचन दोय फिरे जब जाहीं ।
नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवंते बरतौ जगमाहीं ।।११२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीतकाल सबही जन कांपैं, खड़े जहां बन बिरछ डहे हैं ।
झंझा बायु बहै बरसा रित, बरसत बादल झूम रहे हैं ।।
तहां धीर तटिनीतट चौबट, ताल-पालपै कर्म दहे हैं ।।
सहैं सँभाल सीतकी बाधा, ते मुनि तारनतरन कहे हैं ।।११३।।

भूख प्यास पीड़े उर अंतर, प्रजलै आंत देह सब दागै ।
अगनिसरूप धूप ग्रीषमकी, ताती बाल झालसी लागै ।।
तपै पहार ताप तन उपजै, कोपै पित्त दाहजुर जागै ।
इत्यादिक ग्रीषमकी बाधा, सहत साधु धीरज नहिं त्यागै ।।११४।।

डांस मांस माखी तन काटैं, पीड़ैं बनपंछी बहुतेरे ।
डसैं ब्याल विषयाले बीछू, लगैं खजूरे आन घनेरे ।।
सिंह स्याल सुंडाल सतावैं, रीछ रोझ दुख देहिं बड़ेरे ।
ऐसे कष्ट सहैं समभावन, ते मुनिराज हरौ अघ मेरे ।।११५।।

अंतर विषय-वासना बरतै, बाहर लोकलाज भय भारी ।
तातैं परम दिगंबर मुद्रा, धर नहिं सकैं दीन संसारी ।।
ऐसी दुद्धर नगन परीषह, जीतें साधु सीलव्रतधारी ।
निर्विकार बालकवत निर्भय, तिनके पायन ढोक हमारी ।।११६।।

देस कालकौ कारन लहिकै, होत अचैन अनेक प्रकारै ।
तब तहां खिन्न होहिं जगवासी, कलमलाय थिरतापद छारै ।।
ऐसी अरति परीषह उपजत, तहां धीर धीरज उर धारैं ।
ऐसे साधनकौ उर अंतर, बसौ निरंतर नाम हमारैं ।।११७।।

जे प्रधान केहरिकौं पकरैं, पन्नग पकरि पांवसौं चंपत ।
जिनकी तनक देखि भौं बांकी, कोटिक सूर दीनता जंपत ।।
ऐसो पुरुष-पहार-उड़ावन, प्रलय-पवन तिय-वेद पयंपत ।
धन्य धन्य ते साधु साहसी, मन-सुमेरु जिनकौ नहिं कंपत ।।११८।।

चार हाथ परवान निरखि पथ, चलत दिष्ट इत उत नहिं तानैं ।
कोमल पांय कठिन धरती पर, धरत धीर बाधा नहिं मानैं ।।
नाग तुरंग पालकी चढ़ते, ते सवाद उर यादि न आनैं ।
यों मुनिराज भरैं चर्यादुख, तब दिढ़कर्म कुलाचल भानैं ।।११९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुफा मसान सैल तरु कोटर, निवसैं जहां सुद्धि भू हेरैं ।
परिमित काल रहैं निहचल तन, बारबार आसन नहिं फेरैं ।।
मानुष देव अचेतन पसुकृत, बैठे विपत आन जब घेरै ।
ठौर न तजैं भजैं थिरता पद, ते गुरु सदा बसौ उर मेरे ।।१२०।।

जे महान सोनेके महलन, सुंदर सेज सोय सुख जोवैं ।
ते अब अचलअंग एकासन, कोमल कठिन भूमिपर सोवैं ।।
पाहन-खंड कठोर कांकरी, गड़त कोर कायर नहिं होवैं ।
ऐसी सयन-परीषह जीतत, ते मुनि कर्मकालिमा धोवैं ।।१२१।।

जगत जीव जावंत चराचर, सबके हित सबके सुखदानी ।
तिनैं देख दुर्वचन कहैं दुठ, पाखंडी ठग यह अभिमानी ।।
मारौ याहि पकरि पापीकौं, तपसी-भेष चोर है छानी ।
ऐसै वचन-बाणकी वर्षा, छिमाढाल ओढ़ैं मुनिग्यानी ।।१२२।।

निरपराध निर्बैर महा मुनि, तिनकौं दुष्टलोग मिलि मारैं ।
केई खैंच थंभसौं बाँधत, केई पावक मैं परजारैं ।।
तहां कोप नहिं करहिं कदाचित, पूरब कर्म-विपाक विचारैं ।।
समरथ होय सहैं बध बंधन, ते गुरु सदा सहाय हमारैं ।।१२३।।

घोर वीर तप करत तपोधन, भयौ खीन सूखी गल बाहीं ।
अस्थि-चाम अवसेस रह्यौ तन, नसाजाल झलक्यौ जिसमाहीं ।
ओषधि असन पान इत्यादिक, प्रान जाय पर जांचत नाहीं ।
दुद्धर अजाचीक व्रत धारैं, करहिं न मलिन धरम परछाहीं ।।१२४।।

एक बार भोजनकी बिरियाँ, मौन साधि बसतीमैं आवैं ।
जो नहिं बनै जोग भिच्छाबिधि, तौ महंत मन खेद न लावैं ।
ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतैं, तब तप विरद भावना भावैं ।
यों अलाभकी परम परीषह, सहैं साधु सोई सिव पावैं ।।१२५।।

बात पित्त कफ सोनित चारौं, ये जब घटैं बढ़ैं तनमाहैं ।
रोगसंजोग सोग तन उपजत, जगत जीव कायर हो जाहैं ।।
ऐसी व्याधि वेदना दारुन, सहैं सूर उपचार न चाहैं ।।
आतम-लीन देहसौं विरकत, जैन जती निज नेम निबाहैं ।।१२६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूखे तिन अरु तीखन कांटे, कठिन कांकरी पांय बिदारै ।
रज उड़ि आय परै लोचनमैं, तीर फांस तन पीर विथारै ।।
तापर पर सहाय नहिं वांछत, अपने करसौं काढ़ न डारैं ।।
यों तिन-परस-परीषह विजई, ते गुरु भव भव सरन हमारैं ।।१२७।।

जावजीव जलन्हौन तज्यौ जिन, नगनरूप बनथान खरे हैं ।
चलै पसेव धूपकी बिरियाँ, उड़त धूल सब अंग भरे हैं ।।
मलिन देहकौं देखि महामुनि, मलिन भाव उर नाहिं करे हैं ।
यों मलजनित परीषह जीतैं, तिनैं हाथ हम सीस धरे हैं ।।१२८।।

जे महान विद्यानिधि विजई, चिर तपसी गुन अतुल भरे हैं ।
तिनकी विनय वचनसौं अथवा, उठि प्रनाम जन नाहिं करे हैं ।
तौ मुनि तहाँ खेद नहिं मानैं, उर मलीनता भाव हरे हैं ।
ऐसे परमसाधुके अहनिसि, हाथ जोरि हम पांय परे हैं ।।१२९।।

तर्क छन्द व्याकरन कलानिधि, आगम अलंकार पढ़ जानैं ।
जाकी सुमति देखि परवादी, बिलखे होंहिं लाज उर आनैं ।
जैसैं नाद सुनत केहरिकौ, बनगयन्द भागत भय मानैं ।
ऐसी महाबुद्धिके भाजन, पै मुनीस मद रंच न ठानैं ।।१३०।।

सावधान बरतैं निसिवासर, संजम-सूर परम वैरागी ।
पालत गुपति गये दीरघ दिन, सकल संग-ममता परित्यागी ।
अवधिग्यान अथवा मनपरजय, केवल-किरन अजौं नहिं जागी ।
यों विकलप नहिं करहिं तपोधन, सो अग्यानविजई बड़भागी ।।१३१।।

मैं चिर काल घोर तप कीनौं, अजौं, रिद्धि-अतिसय नहिं जागे ।
तपबल सिद्ध होंहिं सब सुनिये, सो कछु बात झूठसी लागै ।
यों कदापि चितमैं नहिं चिंतत, समकित-सुद्ध सांत-रस पागे ।
सोई साधु अदर्सनविजई, ताके दरसनसौं अघ भागे ।।१३२।।

कवित्त इकतीसा ।

ग्यानवरणीसौं दोय प्रग्या अग्यान होय,
एक महामोहतैं अदरस बखानिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरायकर्मसेती उपजै अलाभ दुख,
सपत चारित्र-मोहनीके बल जानिये ।।
नगन निषिद्या नारि मान सनमान गारि,
जांचना अरति सब ग्यारै ठीन ठानिये ।
एकादस बाकी रहीं वेदनी उदैसौं कहीं,
बाइस परीषा उदै, ऐसे उर आनिये ।।१३३।।

अड़िल्ल ।

एक बार इनमाहिं, एक मुनिकै कही ।
सब उनीस उतकृष्ट, उदय आवैं सही ।।
आसन सयन विहार, दोय इनमाहिंकी ।
सीत उसनमैं एक, तीन ये नाहिंकी ।।१३४।।

दोहा ।

अब दसलच्छन धर्म के, कहूं मूल दस अंग ।
जे नित श्री आनंद मुनि, पालत हैं सरवंग ।।१३५।।

चौपाई ।

बिनादोष दुर्जन दुख देय । समरथ होय सकल सह लेय ।।
क्रोध कषाय न उपजै जहां । उत्तम छिमा कहावै तहां ।।१३६।।

आठ महामद पाय अनूप । निरभिमान बरतै मृदुरूप ।।
मानकषाय जहां नहिं होय । मार्दव नाम धरम है सोय ।।१३७।।

जो मनचिंतै सो मुख कहै । करै कायसौं कारज वहै ।।
मायाचार न उर पाइये । आर्जव धर्म यही गाइये ।।१३८।।

बोलै वचन स्वपर हितकार । सत्यस्वरूप सुधा-उनहार ।।
मिथ्यावचन कहै नहिं भूल । सोई सत्य धर्मतरुमूल ।।१३९।।

पर-कामिनि पर-दरबमझार । जो बिरक्त बरतै छल छार ।।
अंतर सुद्ध होय सरवंग । सोई सौच धर्मकौ अंग ।।१४०।।

मन समेत जो इंद्री पंच । इनकौं सिथिल करै नहिं रंच ।।
त्रस थावरकी रच्छा जोय । संजम धर्म बखान्यौ सोय ।।१४१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ख्याति लाभ पूजा सब छंड । पंच करनकौं दीजै दंड ।।
सो तपधर्म कह्यौ जगसार । अनसनादि बारह परकार ।।१४२।।

संजमधारी व्रती प्रधान । दीजै चउबिध उत्तम दान ।।
तथा दुष्टविकलप परिहार । त्यागधर्म बहु सुखदातार ।।१४३।।

बाहिज परिग्रहकौं परित्याग । अंतर ममता रहै न लाग ।।
आकिंचन यह धर्म महान । सिव-पद-दायक निहचै जान ।।१४४।।

बड़ी नारि जननी सम जान । लघु पुत्री सम बहिन बखान ।।
तजि विकार मन बरतै जेह । ब्रह्मचर्य परिपूरन एह ।।१४५।।

दोहा ।

सोलह कारन भावना, भावैं मुनि आनंद ।
तिनकौ नाम सरूप कछु, लिखौं सकल सुखकंद ।।१४६।।

चौपाई ।

आठ दोष मद आठ मलीन । छै अनायतन सठता तीन ।।
ये पचीस मलवरजित होय । दर्सन-सुद्धि कहावै सोय ।।१४७।।

रत्नत्रयधारी मुनिराय । दर्सन-ग्यान-चरित-समुदाय ।।
इनकी विनयविषैं परवीन । दुतिय भावना सो अमलीन ।।१४८।।

सीलभार धारै समचेत । सहस अठारह अंग समेत ।।
अतीचार नहिं लागै जहां । तृतिय भावना कहिये तहां ।।१४९।।

आगम-कथित अर्थ अवधार । जथासकति निजबुधि अनुसार ।।
करै निरंतर ग्यान अभ्यास । तुरिय भावना कहिये तास ।।१५०।।

दोहा ।

धर्म धर्मके फलविषै, बरतै प्रीति विसेख ।।
यही भावना पंचमी, लिखी जिनागम देख ।।१५१।।

चौपाई ।

ओषधि अभय ग्यान आहार । महादान यह चार प्रकार ।।
सक्ति समान सदा निरबहै । छठी भावना धारक वहै ।।१५२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनसन आदि मुकति-दातार । उत्तम तप बारह परकार ।।
बल अनुसार करै जो कोय । सो सातमी भावना होय ।।१५३।।

जती-वर्गकौं कारन पाय । विघन होत जो करै सहाय ।।
साधु-समाधि कहावै सोय । यही भावना अष्टम होय ।।१५४।।

दसबिध साधु जिनागम कहे । पथ-पीड़ित रोगादिक गहे ।।
तिनकी जो सेवा-सतकार । यहि भावना नौमी सार ।।१५५।।

परम पूज्य आतम अरहंत । अतुल अनंत चतुष्टयवंत ।।
तिनकी थुति नति पूजा भाव । दसम भावना भवजल-नाव ।।१५६।।

जिनवर-कथित अर्थ अवधार । रचना करै अनेक प्रकार ।।
आचारजकी भक्ति विधान । एकादसम भावना जान ।।१५७।।

विद्यादायक विद्यालीन । गुणगरिष्ठ पाठक परवीन ।।
तिनके चरन सदा चित रहै । बहु श्रुति-भक्ति बारमी यहै ।।१५८।।

भगवत भाषित अर्थ अनूप । गनधर ग्रंथित ग्रंथ-सरूप ।।
तहां भक्ति बरतै अमलान । प्रवचन-भक्ति तेरमी जान ।।१५९।।

षट आवश्यक क्रिया विधान । तिनकी कबही करै न हान ।।
सावधान बरतै थिरचित्त । सो चौदहमी परम पवित्त ।।१६०।।

करि जप तप पूजा व्रत भाव । प्रगट करै जिन-धर्म-प्रभाव ।।
सोई मारग परभावना । यहै पंचदसमी भावना ।।१६१।।

चार प्रकार संघसौं प्रीति । राखै गाय-वच्छकी रीति ।।
यही सोलमी सब सुखदाय । प्रवचन-वात्सल्य अभिधाय ।।१६२।।

दोहा ।

सोलहकारन भावना, परम पुन्यकौ खेत ।
भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थंकरपद हेत ।।१६३।।

बंध-प्रकृति जिनमत विषैं, कहीं एकसौ बीस ।।
सो सत्रह मिथ्यातमैं, बांधत है निसदीस ।।१६४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर आहार दुक, तीन प्रकृति ये जान ।।
इनकौ बंध मिथ्यातमैं, कह्यौ नहीं भगवान ।।१६५।।

तातैं तीर्थंकर प्रकृति, तीनों समकित माहिं ।।
सोलह कारनसौं बंधै, सबकौ निहचै नाहिं ।।१६६।।

सोरठा ।

पूज्यपाद मुनिराय, श्रीसरवारथ-सिद्धिमैं ।।
कह्यौ कथन इहि भाय, देखि लीजियो सुबुधि-जन ।।१६७।।

कुसुमलता ।

सोलह कारन ये भवतारन, सुमरत पावन होय हियौ ।।
भावैं श्रीआनंद महामुनि, तीर्थंकर पद बंध कियौ ।।१६८।।

काय कषाय करी कृस अति ही, सत संजम गुण पोढ़ कियौ ।।
तप-बल नाना रिद्धि उपन्नी, राग विरोध निबार दियौ ।।१६९।।

जिस बन जोग धरैं जोगेसर, तिस बनकी सब विपत टलैं ।।
पानी भरहिं सरोवर सूखे, सब रितुके फलफूल फलैं ।।१७०।।

सिंहादिक जे जातविरोधी, ते सब बैरी बैर तजैं ।।
हंस भुजंगम मोर मंजारी, आपसमैं मिलि प्रीति भजैं ।।१७१।।

सोहैं साधु चढ़े समतारथ, परमारथ पथ गमन करैं ।।
सिवपुर पहुंचनकी उर वांछा, और न कछु चित चाह धरैं ।।१७२।।

देहविरक्त ममत्त बिना मुनि, सबसौं मैत्री-भाव बहैं ।।
आतमलीन अदीन अनाकुल, गुन वरनत नहिं पार लहैं ।।१७३।।

एक दिना ते छीर बनांतर, ठाड़े मुनि वैराग भरे ।।
पौन परीषहसौं नहिं कांपै, मेरु-सिखर ज्यों अचल खरे ।।१७४।।

सो मर नरक कमठचर पापी, नानाभांति विपत्ति भरी ।।
तिसही काननमैं विकटानन, पंचाननकी देह धरी ।।१७५।।

देखि दिगंबर केहरि कोप्यौ, पूर्वभवांतर बैर दह्यौ ।।
धायौ दुष्ट दहाड़ ततच्छन, आन अचानक कंठ गह्यौ ।।१७६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीखे नखन विदारै काया, हाथ कठोरन खंड करै ॥
बांकी दाढ़नसौं तन भेदै, वदन भयानक ग्रास भरै ॥१७७॥

यों पसुकृत परचंड परीषह, समभावनासौं साधु सही ॥
क्रोध विरोध हिये नहिं आन्यौ, परमछिमा उरमांझ बही ॥१७८॥

धनि धनि श्रीआनंद मुनीसुर, धनि यह धीरज-भाव भजे ॥
ऐसे घोर उपद्रवमैं जिन, जोग जुगतसौं प्रान तजे ॥१७९॥

अंत समय परजंत तपोधन, सुभ भावनसौं नाहिं चये ॥
आनत नाम स्वर्ग-मैं स्वामी, सुरगन-पूजित इंद्र भये ॥१८०॥

दोहा।

सुरगलोक बरनन लिखों, जथासकति सुखरीत ।
धर्म धर्म के फलविषैं, ज्यों मन उपजै प्रीत ॥१८१॥

चौपाई।

चंदकांति मूँगा-मनि-मई । नानाबरन भूमि बरनई ॥
रात दिवसकौ भेद न जहां । रतन-उदोत निरंतर तहां ॥१८२॥

मनि कंगुरे कंचन प्राकार । औंड़ी परिखा ऊंचे द्वार ॥
तोरन तुंग रतन-गृह लसैं । ऐसे सुरगलोक पुर बसैं ॥१८३॥

चंपक पारिजात मंदार । फूलन फैल रही महकार ॥
चैतबिरछतैं बढ़्यौ सुहाग । ऐसे सुरग रबाने बाग ॥१८४॥

विपुल वापिका राजैं खरीं । निर्मल नीर सुधामय भरीं ॥
कंचन कमल-छई छबिवान । मानिक खंडखचित सोपान ॥१८५॥

कामधेनु सोहैं सब गाय । कलपवृच्छ सबही तरुराय ॥
रतनजाति चिंतामनि सबै । उपमा कौन सुरगकौं फबै ॥१८६॥

गान करैं कहिं सुरसुंदरीं । बन-बीथिन बैठी रसभरीं ॥
कहीं देवगन वनितासंग । लीलाबन विचरैं मनरंग ॥१८७॥

मंद सुगंधि बहै नित वाय । पहु-परैनु रंजित सुखदाय ॥
आंधी मेह न कबहीं होय । ताप तुसार न व्यापै कोय ॥१८८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रितुकी रीति फिरै नहिं कदा । सोमकाल सुखदायक सदा ।।
छत्रभंग चोरी उतपात । सुपने नहीं उपद्रवजात ।।१८९।।

ईति भीति भूचाल न होय । बैरी दुष्ट न दीसै कोय ।।
रोगी दोखी दुखिया दीन । बिरधवैस गुण-संपति हीन ।।१९०।।

बढ़ती अंगविकलता कहीं । ये सब सुरगलोक-मैं नहीं ।।
सहज सोम सुंदर सरवंग । सब आभरन अलंकृत अंग ।।१९१।।

लच्छन लंछित सुरभि सरीर । रिद्धि-सिद्धि-मंदिर मन धीर ।।
काम-सरूपी आनँद कंद । कामिनि-नेत्र-कमलिनी-चंद ।।१९२।।

बदन प्रसन्न प्रीतरस भरे । बिनय बुद्धि विद्या आगरे ।।
यों बहुगुण मंडित स्वयमेव । ऐसे सुरग निवासी देव ।।१९३।।

दोहा ।

ललितवचन लीलावती, सुभ लच्छन सुकुमाल ।
सहज सुगंध सुहावनी, जथा मालतीमाल ।।१९४।।

सीलरूप लावन्य-निधि, हावभाव रसलीन ।।
सीमा सुभग सिंगारकी, सकल कला परवीन ।।१९५।।

निरत गीत संगीत सुर, सब रसरीत मँझार ।।
कोविद होंहि सुभावतैं, सुरग लोककी नार ।।१९६।।

पंच इंद्रि मनकौं महा, जे जगमैं सुखहेत ।।
तिन सबहीकौ जानियौ, सुरग-लोक-संकेत ।।१९७।।

चौपाई ।

इत्यादिक बहु संपति-थान । देवलोक-महिमा असमान ।।
आनतवर विमान है जहां । धर्यौ जनम सुरपतिने तहां ।।१९८।।

दोहा ।

उपज्यौ संपुट गर्भतैं, तेज पुंज अति चंड ।।
मानौं जलधर पटलतैं, प्रगट्यौ दामिनि-दंड ।।१९९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक महूरतमैं तहां, संपूरन तन धार ॥
किधौं रतनकी सेज तजि, सोवत उठ्यौ कुमार ॥२००॥

मनि-किरीट माथे दिपै, आनन अधिक सुरूप ॥
कानन कुंडल जगमगैं, पानन कटक अनूप ॥२०१॥

भुज-भूषन-भूषित भुजा, हिये हार छबि देत ॥
अंग अंग इत्यादि बहु, सब आभरन समेत ॥२०२॥

चौपाई ।

सनै सनै देखै दिस सही, लोचनकोर कान लगि रही ॥
विस-मयवंत होय मन ताम । कहै कौन आयौ किस धाम ॥२०३॥

अहो कौन यह उत्तम देस । सकल संपदाथान बिसेस ॥
कंचनके मंदिर मनिजरे । दीसैं दिव्य अपछराभरे ॥२०४॥

अति उतंग अति ही दुति धरै । मध्य सभा-मंडप मनहरै ॥
सिंहासन अदभुत इहि ठाम । मानौं मेरुसिखर अभिराम ॥२०५॥

अनुपम नाटक देखनजोग । श्रवणसुखद ये गीत मनोग ॥
ये लावन्यवतीं वरनारि । रूप-जलधि बेला उनहारि ॥२०६॥

ये उतंग हाथी मदभरे । तेज तुरंगनके गन खरे ॥
कंचन रथ पायकदल जेह । मो प्रति सिर नावैं सब येह ॥२०७॥

सब आनंद भरे मुझ देख । सब बिनीत सब सुंदर भेख ॥
जयजयकार करैं विहँसाय । कारन कछु जान्यौ नहिं जाय ॥२०८॥

दोहा ।

इन्द्र-जाल अथवा सुपन, कै माया भ्रम कोय ॥
यों सुरेस सोचै हिये, पै निरनय नहिं होय ॥२०९॥

चौपाई ।

तब तिस थानक देव प्रधान । मनकी बात अवधिसौं जान ॥
जोग वचन बोलै सिरनाय । संसय हरन स्त्रवन सुखदाय ॥२१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम विनती सुनिये सुरराज । जीवन जनम सफल सब आज ॥
अब सनाथ स्वामी हम भये । जनम जोगतैं पावन थये ॥२११॥

सूरज उदय कमलिनी-बाग । विकसै जथा जग्यौ सिर भाग ॥
नन्द वर्ध हम देहिं असीस । चिर यह राज करौ सुरईस ॥२१२॥

अहो नाथ यह उत्तम ठाम । सुरग तेरमो आनत नाम ॥
जगतसार लछमीकौ येह । निरुपम भोग निरंतर गेह ॥२१३॥

तुम इहि थान इन्द्र अवतरे । पूर्वजन्म दुद्धर तप धरे ॥
ये सब सुर सेवक तुम तनें । ये परिवार लोक हैं घनें ॥२१४॥

ये मनोग वनिता मंडली । तुम आदेस चहै मनरली ॥
ये पटदेवी लावनखान । सब देवीं इन मानैं आन ॥२१५॥

ये विमान पुर महल उतंग । चमर छत्र सेना सप्तंग ॥
धुजा सिंहासन आदि मनोग । सकल सम्पदा यह तुम जोग ॥२१६॥

ऐसे वचन अनन्तर तबै । जान्यौ इन्द्र अवधिबल सबै ॥
मैं पूरव कीनौं तप घोर । दंडे करम धरम-धन-चोर ॥२१७॥

जीवजातकौं निर्भयदान । दीनौं आप बराबर जान ॥
सब उपसर्ग सहे धरि धीर । जीत्यौ महाराग रिपु वीर ॥२१८॥

काम विषम वैरी वस कियौ । अरु कषाय बनकौं जारियौ ॥
जिनवर-आन अखंडित पोष । चारित चिर पाल्यौ निरदोष ॥२१९॥

इहि विध सेयौ धर्म महान । तिस प्रभाव दीखै यह थान ॥
दुरगति-पात निवारन करौ । तिन मुझ इंद्रलोक ले धरौ ॥२२०॥

सो अब सुलभ नहीं इस देह । भोग जोग है थानक येह ॥
रागआग दुखदायक सदा । चारितजल बिन बुझै न कदा ॥२२१॥

सो कारन सुरगतिमैं नाहिं । व्रतकौ उदय न या पदमाहिं ॥
ह्यां सम्यकदरसन अधिकार । संकादिक मल वरजित सार ॥२२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कै जिनवरकी भक्ति सहाय । और न दीखै धर्म उपाय ।।
यह विचारि जिनपूजनहेत । उठ्यौ इन्द्र परिवार समेत ।।२२३।।

अमृत-वापिकामैं करि न्हौन । गयौ जहां मनिमय जिनभौन ।।
रतन-बिम्ब बन्दे विहसाय । भावभगतसौं सीस नवाय ।।२२४।।

पूजा करी दरब धरि आठ । पुलकित अंग पढ्यौ थुतिपाठ ।।
चैत-बिरछ जिन-प्रतिमा जहां । महा महोच्छव कीनौं तहां ।।२२५।।

यों बहु पुन्य उपायौ सही । फेरि आय निज सम्पति गही ।।
दिव्यभोग भुंजे बड़भाग । लोकोत्तम जिस सहज सुहाग ।।२२६।।

सोभन-रूप प्रथम संठान । वसु वैक्रियक सुलच्छनवान ।।
कोमल सुरभि सचिक्कन देह । सात धात वरजित गुनगेह ।।२२७।।

पलकपात लोचनमैं नहीं । मलपसेव नख केस न कहीं ।।
जरा कलेस न चिंता सोग । नाहीं अलप मृत्युभय रोग ।।२२८।।

इत्यादिक दुखजोग अनेक । तिनमैं नहीं अमरके एक ।।
आठ रिद्धि अनिमादि पसत्थ । तिसबल सकलकाज समरत्थ ।।२२९।।

सुरग लोकके सुखकी कथा । कहै कहां लौं बुधबल जथा ।।
बैठि मनोगत विमल विमान । विचरै नभ-पथ वांछित थान ।।२३०।।

कबही मेरु जिनालय गमै । कबही आन कुलाचल रमै ।।
दीप समुद्र असंख अपार । करै सुरेंद्र सुछंद विहार ।।२३१।।

वर्ष वर्षमैं हर्ष बढ़ाय । तीन बार नन्दीसुर जाय ।।
पंच कल्यानक समय सुजोग । करै तीर्थपद-नमन नियोग ।।२३२।।

और केवली प्रभुके पाय । दोय कल्यानक पूजै आय ।।
निज कोठे थिर होय सुग्यान । करै दिव्य-वानी रसपान ।।२३३।।

सभा सिंहासन बैठि सुरेस । देय सुरन प्रति हित उपदेस ।।
करै तत्त्व-वरनन विस्तार । अनेकांत वानी अनुसार ।।२३४।।

जे सुर सम्यक दरसन हीन । तपबल देव भये सुखलीन ।।
तिन-प्रति धर्मवचन उच्चरै । दरसन गुनकी प्रापति करै ।।२३५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहबिध बिबिध करै सुभकाज । महापुन्य संचै सुरराज ।।
दरसन ग्यान रतनभंडार । चारित गुनकौ नहिं अधिकार ।।२३६।।

धर्म-वासना-वासित जोग । करै पुनीत पुन्यफल भोग ।।
कबहीं सुनै अपछरा-गान । निरखै नाटक निरुपम थान ।।२३७।।

कबहीं सुभ सिंगार रसलीन । हाव भाव जोवै परवीन ।।
कबहीं हास्यकथा विस्तरै । वनक्रीडा देविन सँग करै ।।२३८।।

यौं नानाबिध करत विलास । प्रतिदिन सुखसागरमैं बास ।।
साढ़े तीन हाथ परवान । दिव्य सरीर अतुल दुतिवान ।।२३९।।

सागर बीस परमथिति जास । बीस पच्छ पर लेय उसास ।।
बीसहजार वर्ष अवसान । मनसा भोजन करै महान ।।२४०।।

पंचम पिरथी लौं जिस सही । अवधि सकति जिनसासन कही ।।
तावत मान विक्रियाखेत । सकल काज साधन सुखहेत ।।२४१।।

असंख्यात सुर सेवन पाय । देवी नेत्र-कमल-दिनराय ।।
यों पूरवकृत पुन्यसँजोग । करैं इंद्र इंद्रासन भोग ।।२४२।।

दोहा ।

कहा इंद्र अहमिंद्र पद, जनम धरै फिर आय ।।
जैनधर्म नृपकी धुजा, लोक-सिखर फहराय ।।२४३।।

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां आनन्दरायइन्द्रपदप्राप्तिवर्णनं

नाम चतुर्थोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवाँ अधिकार

गर्भावतारवर्णनं ।

दोहा ।

बंदौं पारस पद-कमल, अमल बुद्धि-दातार ॥
अब बरनौं जिनराजके, पंच कल्यानक सार ॥१॥

चौपाई ।

प्रथम अनंत अलोकाकास । दसौं दिसा मरजाद न जास ॥
दूजौ दरब जहां नहिं और । सुन्न सरूप गगन सब ठौर ॥२॥

तहां अनादि लोकथिति जान । छीदे पाँय पुरुष-संठान ॥
कटिपै हाथ सदा थिर रहै । यह सरूप जिनसासन कहै ॥३॥

पौन पिंड बेढ़्यौ सरवंग । चौदह राजू गगन उतंग ॥
घनाकार राजू गन ईस । कहे तीन सौ तैंतालीस ॥४॥

जीवादिक छह दरब सदीव । तिनसौं भर्‍यौ जथा घट घीव ॥
स्वयंसिद्ध रचना यह बनी । ना इस करता हरता धनी ॥५॥

दरब दृष्टिसौं ध्रौव्य-सरूप । परजयसौं उतपतछयरूप ॥
जैसे समुद सदा थिर लसै । लहर न्याय उपजै अरु नसै ॥६॥

लोक-नाड़ि तिस मध्य महान । चौदह राजू व्योम उचान ॥
राजूमित चौड़ी चहुंपास । यह त्रसखेत जिनागम भास ॥७॥

याके बाहर जंगम जीव । समुदघात बिन नाहिं सदीव ॥
तामैं तीनौं लोक बिसाल । ऊरध मध्य और पाताल ॥८॥

सोलह स्वर्ग पटल बावन्न । नव ग्रीवक नव जान रवन्न ॥
अनुदिस और अनुत्तर येह । एक एक ही पटल गिनेह ॥९॥

ये सब त्रेसठ पटल बखान । सिद्धखेत सोहैं सिर थान ॥
ऊरध लोक बसै इहि भाय । उत्तम सुरथानक सुखदाय ॥१०॥

अधोलोकमैं बहु बिध भेय । सात नरक असुरादिक देव ॥
मध्यलोक पुनि तीजौ तहां । असंख्यात दीपोदधि जहां ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिनमैं सोभावंत सुहात । जंबूदीप जगतविख्यात ।।
लच्छ महाजोजन विस्तार । सूरजमंडलकी उनहार ।।१२।।

वज्रकोट जिस ओट अभंग । परिमित जोजन आठ उतंग ।।
चारौं दिस दरवाजे चार । तिनके नाम लिखौं अवधार ।।१३।।

विजय नाम पूरबमैं जान । वैजयंत दच्छिन दिस ठान ।।
पच्छिम भाग जयंत दुवार । उत्तरमैं अपराजित सार ।।१४।।

लवन-समुद्र खातिकारूप । चहुंदिस बेढ़्यौ सजल सरूप ।।
तहां सुदरसन मेरु महान । मध्य भाग सोभा असमान ।।१५।।

अति उतंग लख जोजन सोय । रिजु-विमान जा ऊपर होय ।।
सब सैलनमैं ऊंचो यहै । ग्रीव उठाय किधौं इम कहै ।।१६।।

करै कौन गिरि मेरी रीस । जिनपति न्हौन होय मुझ सीस ।।
चारौं दिस चारौं गजदंत । नील निषधसौं लगे महंत ।।१७।।

छह कुलपर्वत बड़े विथार । पूरब पच्छिम दीरघ सार ।।
आठ महागिरि दिग्गज नाम । मेरु निकट आठौं दिस ठाम ।।१८।।

कनक बरन सोलह बच्छार । महा-विदेह विषैं छबिसार ।।
कंचनगिरि दीसै परवान । सीता सीतोदा तट थान ।।१९।।

कुरु भूमाहिं जमक गिरि चार । नील निषधके निकट निहार ।।
चार नाभिगिरि मिथ्या नाहिं । मध्यम जघनभोग-भूमाहिं ।।२०।।

विजयारध पर्वत चौंतीस । इतने ही वृषभाचल दीस ।।
ते मलेच्छमधिखंडनबिखैं । चक्री जहां नांव निज लिखैं ।।२१।।

यों गिरि दीप विषैं बरनये । ग्यारह अधिक एक सौ भये ।।
भद्रसाल बन दोय सुबास । पूरब अपर मेरुके पास ।।२२।।

दो तरु जंबू-सेंभल तनैं । उत्तम भोगभूमिमैं बनैं ।।
छह द्रह बड़े कुलाचलसीस । पदम महापदमादिक दीस ।।२३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीस सरोवर और सुनेह । सीला सीतोदामधि तेह ।।
उत्तम मध्यम जघन विसेस । भोगभूमि छह कही जिनेस ।।२४।।

महादेस चौंतीस सुखेत । ऐरावत अरु भरत समेत ।।
इतनी ही नगरी परवान । आरज-खंड मध्य थिर थान ।।२५।।

उपसमुद्रकी संख्या यही । कछू विनासिक कछु थिर सही ।।
पूरब दिस दो बाग महंत । देवारन्य दीपके अंत ।।२६।।

ऐसे ही पच्छिम दिस दोय । भूतारन्य नाम तिन होय ।।
गंगादिक सरिता दसचार । चौंसठ महा विदेह मझार ।।२७।।

बारह विपुल विभंगा जेह । महानदी नब्बै सब येह ।।
इतने ही सब कुंड महान । जहां तरंगिनि उतरैं आन ।।२८।।

सत्रह लाख सबन परिवार । सहस छानवै ऊपर धार ।।
यह सब जंबूदीप समास । आगममैं विस्तार प्रकास ।।२९।।

दोहा ।

यही कथन अंगनविषैं, बरन्यौ गनधर ईस ।।
तीन लाख पदमैं सही, ऊपर सहस पचीस ।।३०।।

चौपाई ।

यों अनेक रचना आधार । दीपराज राजै अधिकार ।।
तहां मेरुके दच्छिन भाग । किधौं भूमितिय सुभग सुहाग ।।३१।।

भरतखंड छहखंड समेत । धनुषाकार विराजत खेत ।।
तामैं सब सुख धर्म निवास । कासीदेश कुसल जनवास ।।३२।।

गांव खेट पुर पट्टन जहां । धन-कन भरे बसैं बहु तहां ।।
निवसैं नागर जैनी लोय । दयाधर्म पालैं सब कोय ।।३३।।

जिनमंदिर ऊँचे जिनमाहिं । नरनारी नित पूजन जाहिं ।।
पद पद पुरपंकित पेखिये । उदवसथान (?) न कहिं देखिये ।।३४।।

नीर अगाध नदी नित बहैं । जलचर जीव जहां नित रहैं ।।
मुनिजन-भूषित जिनके तीर । काउसग्ग धरि ठाड़े धीर ।।३५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊँचे परवत झरना झरैं । मारग जात पथिक मन हरैं ।।
जिनमैं सदा कंदराथान । निहचल देह धरैं मुनि ध्यान ।।३६।।

जहां बड़े निर्जन बन-जाल । जिनमैं बहुबिध बिरछ विसाल ।।
केला करपट कटहल कैर । कैथ करोंदा कौंच कनैर ।।३७।।

किरमाला कंकोल कल्हार । कमरख कंज कदम कचनार ।।
खिरनी खारक पिंडखजूर । खैर खिरहटी खेजड़ भूर ।।३८।।

अर्जुन अमली आम अनार । अगर अंजीर असोक अपार ।।
अरनी औंगा अरलू भने । ऊंबर अंड अरीठा घने ।।३९।।

पाकर पीपल पूग प्रियंग । पीलू पाटल पाढ़ पतंग ।।
गौंदी गुड़हल गूलर जान । गांडर गुंजा गोरख पान ।।४०।।

पंचा चीढ़ चिरोंजी फली । चंदन चोल चमेली मली ।।
जंड जँभीरी जामन कोट । नीम नारियल हीस हिगोट ।।४१।।

सौना सीसम सेंभल साल । सालर सिरस सदा फलजाल ।।
बांस बबूल बकायन बेर । बेत बहेड़ा बड़हल पेर ।।४२।।

महुआ मौलसिरी मचकुंद । मरुवा मोखा करना कुन्द ।।
तूत तबोंलनि तींदू ताल । तगर तिलक तालीस तमाल ।।४३।।

इहि बिघ रहे सरोवर छाय । सबही कहत कथा बढ़ जाय ।।
तहां साधु एकांत विचार । करैं पठन-पाठन-विधि सार ।।४४।।

बिबिध सरोवर सीतल ठाम । पंथी बैठि लेहिं बिसराम ।।
निर्मल नीर भरे मनहार । मानौं मुनिचित विगत विकार ।।४५।।

सोहैं सफल सालके खेत । भये नम्र फल-भार समेत ।।
सज्जनजन ज्यों संपति पाय । छोड़ गुमान चलैं सिर नाय ।।४६।।

केवलग्यानी करत विहार । जहां सदा सब सुख-दातार ।।
अचारज चहु-संघ समेत । विहरमान भविजन हितहेत ।।४७।।

केई जहां महाव्रत लेहिं । भव-दुखवास जलांजलि देहिं ।।
केई धीर उग्र तप करैं । ते अहिमिंद्र जाय अवतरैं ।।४८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केई श्रावक-के व्रत पाल । अच्युत स्वर्ग बसैं चिरकाल ।।
केई कर जिनजग्य विधान । पावैं पुन्नी अमर-विमान ।।४९।।

केई मुनि वरदान प्रभाव । भोगैं भोगभूमिकी आव ।।
अति पुनीत सब ही विध देस । जहां जनम चाहैं अमरेस ।।५०।।

तहां बनारस नगरी बसै । देखत सुर-नर-मन हुल्लसै ।।
है प्रसिद्ध धरनीपर सोय । तीरथराज कहैं सब कोय ।।५१।।

सोभा जाकी कही न जाय । नाम लेत रसना सुचि थाय ।।
जहां सरोवर नाना भांति । जिनके तीर तरोवर पाँति ।।५२।।

निजजीवन जीवन सुख देहिं । कमल-सुवास सिलीमुख लेहिं ।।
सोहैं सघन रवाने बाग । फले फूल फल बढ़्यौ सुहाग ।।५३।।

सजल खातिका राजै खरी । उठै लहरि लोयन-गति-हरी ।।
कोट उतंग कांगुरे लसैं । मानौं सुरग लोक दिस हँसैं ।।५४।।

ऊँचे महल मनोहर लगैं । सुवरन कलस सिखर जगमगैं ।।
अति उन्नत जिन-मंदिर जहां । तिन महिमा वरनन बुध कहां ।।५५।।

रतनबिंब राजैं जिहि माहिं । सिखर सुरंग धुजा फहराहिं ।।
कंचनके उपकरन समाज । आवै भविजन पूजाकाज ।।५६।।

जय जय सब्द सहित छबि छजै । किधौं धर्म-रयनायर गजै ।।
नगरनारि नित बंदन जाहिं । जिन दरसन उच्छव उरमाहिं ।।५७।।

भूषनभूषित सुंदर देह । मानौं सुभग अपछरा येह ।।
सब गृहस्थ साधैं षट कर्म । पालै प्रजा अहिंसा धर्म ।।५८।।

दोष अठारह वर्जित देव । तिस प्रभुकौं पूजैं बहु भेव ।।
चाह-चिहन-वरजित जो धीर । सोई गुरु सेवैं वरबीर ।।५९।।

आदि अंत जे विगत विरोध । तेई ग्रंथ सुनैं मन सोध ।।
सत्य सील गुन पालैं सदा । तातैं लोग सुखी सर्वदा ।।६०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

प्रजा बनारस नगरकी, नागर नीत सुजान ।।
चार रतनके पारखी, लहिये घर घर थान ।।६१।।

देव धर्म गुरु ग्रंथ ये, बड़े रतन संसार ।।
इनकौं परखि प्रमानिये, यह नर-भव-फल सार ।।६२।।

जे इनकी जानें परख, ते जग लोचनवान ।।
जिनकौं यह सुधि ना परी, ते नर अंध अजान ।।६३।।

लोचनहीनें पुरुषकौं, अंध न कहिये भूल ।।
उर-लोचन जिनके मुँदे, ते आंधे निर्मूल ।।६४।।

चौपाई ।

इहि बिध नगर बसै बहु भाय । सब सोभा बरनी नहिं जाय ।।
अस्वसेन भूपति बड़-भाग । राज करै तहाँ अतुल सुहाग ।।६५।।

कासिप गोत्र जगत परसंस । बंस-इख्वाक-विमल-सर-हंस ।।
तेजवंत दिनपति ज्यौं दिपै । प्रभुता देखि सचीपति छिपै ।।६६।।

कलप-तरोवर सम दातार । रतिपति लाजै रूप निहार ।।
रयनायर सम अति गंभीर । पर्वतराज बराबर धीर ।।६७।।

सोम समान सबनि सुखदाय । कीरति-किरन रही जग छाय ।।
तीन ग्यान संजुगत सुजान । परम विवेकी दया-निधान ।।६८।।

जिनपद भक्ति धर्म-धन-वास । गुरु-सेवा-रति नीति-निवास ।।
कला-चातुरी-बुधि-विग्यान । विद्या-विनय-संपदा-थान ।।६९।।

सकल सार गुण-मानिक-कोष । उभय पच्छ निर्मल निर्दोष ।।
जिन-सूरज उदयाचल राय । तिस महिमा बरनी किमि जाय ।।७०।।

वामादेवी नाम पवित्त । तिनके घर रानी सुभ चित ।।
निरुपम लावन सब गुन-भरी । रूप-जलधि बेला अवतरी ।।७१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नखसिख सहज सुहागिनि नार । तीन-लोक-तिय-तिलक सिंगार ।।
सकल सुलच्छन-मंडित देह । भाषा मधुर भारती येह ।।७२।।

रंभा रति जिस आगे दीन । रोहि-निरूप लगै छबि छीन ।।
इंद्रबधू इमि दीसै सोय । रवि-दुति आगे दीपक-लोय ।।७३।।

जन-मन-हरष बढ़ावन एम । कातिक-चंद्र-चंद्रिका जेम ।।
सकल सार गुनमनिकी खानि । सील संपदाकी निधि जानि ।।७४।।

सज्जनताकी अवधि अनूप । कला सुबुधिकी सीमारूप ।।
नाम लेत अघ तजै समीप । महापुरुष-मुक्ताफल-सीप ।।७५।।

त्रिभुवन-नाथ रत्नकी मही । बुधिबल महिमा जाय न कही ।।
बहुबिध दंपति संपतिजोग । करैं पुनीत पुन्य-फल भोग ।।७६।।

उक्तं च षट्पाहुड़ग्रन्थे आर्या ।

तित्थयरा तप्पियरा हलहर चक्काइं वासदेवाइं ।।
पडिवास भोयभूमिय आहारो णत्थि णीहारो ।।७७।।

चौपाई ।

जिनवर जिनमाता जिनतात । बासदेव बलदेव विख्यात ।।
चक्रीराय जुगलिया जोय । इन सबके मल-मूत्र न होय ।।७८।।

दोहा ।

पूरब गाथाकौ अरथ, लिख्यौ चौपई लाय ।।
षट्पाहुड़टीकाविषै, देख लेहु इहि भाय ।।७९।।

चौपाई ।

अब आगे भविजन मन थंभ । सुनो गर्भ-मंगल आनंद ।।
एक दिना सौधर्म सुरेस । धनपति प्रति दीनौं उपदेस ।।८०।।

आनतेंद्रकी थितिमैं सही । आयु छ मास शेष सब रही ।।
तेबीसम अवतार महान । होसी नगर बनारस-थान ।।८१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्वसेन भूपतिके धाम । पंचाचरज करौ अभिराम ।।
यह सुरेंद्रने आज्ञा करी । सो कुबेर निज माथैं धरी ।।८२।।

चल्यौ तुरत लाई नहिं बार । सोहै संग अमर-परिवार ।।
हरषित अंग पिता घर आय । करी रतन-वर्षा बहुभाय ।।८३।।

जिनके तेज तिमिर नहिं रहै । नाना वरन प्रभा लहलहै ।।
ऐसे निर्मोलक नग भूर । बरसे नृपके आंगन पूर ।।८४।।

दोहा ।

नभसौं आवै झलकती, मनिधारा इहि भाय ।।
सुरग लोक-लछमी किधौं, सेवन उतरी माय ।।८५।।

चौपाई ।

साढ़े तीन कोड़ परवान । यौं नित बरसैं रतन महान ।।
सुरभि सुगंध कलपतरु फूल । बरसावैं सुर आनँदमूल ।।८६।।

गंधोदककी बरसा करैं । मानौं मुकताफल अवतरैं ।।
प्रतिदिन देव-दुंदुभी बजै । किधौं महासागर यह गजै ।।८७।।

नंद वरद जयजय उच्चरैं । मात पिता प्रति सुर यौं करैं ।।
इहि बिध पंचाचरज विलोक । जैन भये मिथ्याती लोक ।।८८।।

दोहा ।

देवन किये छ मास लौं, पंचाचरज अनूप ।।
देखि देखि परजा भई, आनँद अचरजरूप ।।८९।।

चौपाई ।

यों अति आनँदसौं दिन जाहिं । माता मगन सुखोदधि माहिं ।।
मानिक-जटित मनोहर धाम । रत्नपलंक सेज अभिराम ।।९०।।

मनिमय दीप जहां जगमगैं । अति सुगंध आवत अलि पगैं ।।
करि चतुर्थ आनंद-सनानि । करै सयन जननी सुख मानि ।।९१।।

पच्छिम रैन रही जब आय । सोलह सुपनैं देखे माय ।।
तिनके नाम लिखौं अवलोय । पढ़त सुनत पातक छय होय ।।९२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्धड़ी।

सुपनावलि सोलह सुनहु मीत । जिनराज-जनम-सूचक पुनीत ।।
ऐरावत हाथी प्रथम दीस । मदगीलो गंड विसाल सीस ।।९३।।

देख्यौ डक्कारत वृषभराज । अति उज्जल मोतीबरन भ्राज ।।
देख्यौ पंचानन धवलदेह । निज नाद करै ज्यौं सरद-मेह ।।९४।।

देख्यौ मनि-आसन सोभमान । तहँ हेमकलस कमला-सनान ।।
देखी दो पावन पहुप-माल । भ्रमरावलि-बेढ़ी अतिविसाल ।।९५।।

रविमंडल देख्यौ तम-दलंत । उदयाचल ऊपर उदयवंत ।।
संपूरन तारापति-विमान । तारावलि-मध्य विराजमान ।।९६।।

जलतिरत मनोहर मीन-जोट । देखे जिन-जननी पलकओट ।।
देखे चामीकर कलस दोय । अति झलकैं वारिज-ढँके सोय ।।९७।।

देख्यौ कमलाकर कमलछन्न । बहु हंसी हंसनसौं रवन्न ।।
देख्यौ रयनायर गर्जमान । पुनि सिंहपीठ मानिक-निधान ।।९८।।

फिर देख्यौ देव-विमान जोग । धुज घंटा झालरसौं मनोग ।।
प्रगट्यौ महि फोरि फनींद्रधाम । मनि कंचनमय नयनाभिराम ।।९९।।

पुनि रतनरासि देखी अनूप । इंद्रायुध-वरन विचित्र रूप ।।
निर्धूम धनंजय दीपमान । ये देखे सोलह सुपन जान ।।१००।।

दोहा।

गजप्रवेस मुखकमलमैं, सुपनअंत अविलोय ।।
सुखनिद्रा पूरी भई, भयौ प्रात तम खोय ।।१०१।।

पूर्व दिवाकर ऊगयौ, गयौ तिमिर सुखदाय ।।
जैसे जैन-सिधांत सुनि, भरमभाव मिट जाय ।।१०२।।

मंद तेज तारे भये, कछु दीखैं कछु नाहिं ।।
ज्यों तीर्थंकरके उदय, पाखंडी छिप जाहिं ।।१०३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरजवंसी जे कमल, खिले सरोवर माहिं ।।
ज्यों जिनबिंब विलोकिकै, भविलोचन विकसाहिं ।।१०४।।

चंद-विकासी कमल जे, विकसत भये न सोय ।।
ज्यों अजान जिनवचन सुनि, मुदित मूल नहिं होय ।।१०५।।

चक्रवाक हरखित भये, ज्यों जिनमत-संजोग ।।
जीव सुमति पिय-नारिकौ, मिट्यौ अनादि वियोग ।।१०६।।
घूघूगण भूतल विषै, आंधे भये असूझ ।।
जैनग्रन्थके रहसमैं, ज्यों परमती अबूझ ।।१०७।।

कमल-कोष मधुकर बँधे, छुटे जग्यौ सिर-भाग ।।
जथा जीव जिनधर्मसौं, मुक्त होय भवत्याग ।।१०८।।

पथिक लोग मारग चले, सूझे घाट कुघाट ।।
जिनधुनि सुनि सूझै जथा, सुरग मुकतिकी बाट ।।१०९।।

इहि बिध भयौ प्रभात सुभ, आनंद भयौ अतीव ।।
धर्मध्यान आराधना, करन लगे भवि जीव ।।११०।।

जिन-जननी रोमांच तन, जगी मुदित मुख जान ।।
किधौं सकटंक कमलिनी, विकसी निसि अवसान ।।१११।।

मंगलीक वाजित्र धुनि, सुनि बंदीजन-गान ।।
उठी सेज तजि सुखभरी, धर्यौ हियैं सुभ ध्यान ।।११२।।

सामायिक-बिध आदरी, पंच परमपदलीन ।।
और उचित आचार सब, स्नान-विलेपन कीन ।।११३।।

पहरे सुभ आभरन तन, सुंदर वसन सुरंग ।।
कलपबेल जंगम किधौं, चली सखीजन संग ।।११४।।

राजसिंहासन भूप तब, बैठे सभा-सुथान ।।
देवी आवत देखकै, कियौ उचित सनमान ।।११५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्धासन बैठनि दियौ, जोग वचन मुख भास ।।
यों रानी विकसत वदन, बैठी भूपति पास ।।११६।।

सभालोग तारे विविध, भूपति चांद-सरूप ।।
श्रीवामादेवी तहां, दिपै चंद्रिकारूप ।।११७।।

स्वामी सोलह सुपन हम, देखे पच्छिम रैन ।।
श्रीमुखतैं इनकौ सुफल, कहौ श्रवन-सुखदैन ।।११८।।
अस्वसेन भूपाल तब, बोले अवधि विचार ।।
एकचित्त करि देवि तुम, सुनो सुपनफल सार ।।११९।।

चौपाई ।

धुरि गजेंद्र-दरसनतैं जान । होसी जगपति पुत्र प्रधान ।।
महावृषभ पुनि देख्यौ सोय । जग-जेठो नंदन तुम होय ।।१२०।।

सेत सिंह-दरसनफल भास । अतुल अनंती सकति-निवास ।।
कमलामज्जनतैं सुरईस । करै न्हौन कनकाचलसीस ।।१२१।।

पहुपदाम दो देखीं सार । तिसफल दुबिध धर्मदातार ।।
ससितैं सकल लोक सुखदाय । तेजपुंज सूरजतैं थाय ।।१२२।।

मीन जुगलतैं सब सुखभाज । कुंभ विलोकनतैं निधिराज ।।
सरवरतैं सब लच्छनवान । सागरतैं गंभीर महान ।।१२३।।

सिंहपीठतैं मृगलोचनी । होय बाल तुम त्रिभुवनधनी ।।
सुरविमान देख्यौ सुख पाय । सुरगलोकतैं उपजै आय ।।१२४।।

नागराज-गृहकौ सुन हेत । जनमै मति-स्रुति-अवधि समेत ।।
रतनरासिसैं गुन-मनि-खान । कर्मदहन पावकतैं जान ।।१२५।।

गजप्रवेस जो वदनमझार । सुपन-अंत देख्यौ वरनार ।।
श्रीपारस जिन जगतप्रधान । गर्भ तुम्हारे उतरे आन ।।१२६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

सुनि वामादे सुपनफल, रोमांचित तन भूर ।।
सुवचन-जल सींचत किधौं, उगे हरष अंकूर ।।१२७।।

चौपाई ।

अब सौधर्म सुरेस विचार । स्वामि-गर्भ-अवसर निरधार ।।
कुलगिरि-कमलवासिनी जेह । श्रीआदिक देवी गुनगेह ।।१२८।।

तिन्हैं बुलाय कह्यौ सुभ भाव । अस्वसेन भूपति घर जाव ।।
वामादेवीके उरथान । तेवीसम जिन उतरे आन ।।१२९।।

तिनकी गर्भ सौधना करो । निज नियोग सेवा मन धरो ।।
यह सुनि सब आनंदित भई । इंद्र-आन माथे धर लई ।।१३०।।

सुरगलोक तजि आई तहां । बसै बनारसि नगरी जहां ।।
महाकांत तन लावनभरीं । मानौं नभ-दामिनि अवतरीं ।।१३१।।

अंग अंग सब सजे सिंगार । रूपसंपदा अचरजकार ।।
चूडामनि माथे जगमगै । देखत चकाचौंध सी लगै ।।१३२।।

सुरतरु-सुमनदाम उर धरी । अति सुवास दसदिसि विस्तरी ।।
श्रवन-सुखद नेवर-झंकार । सोभा कहत न आवै पार ।।१३३।।

आय नृपतिके पायन नईं । आयस मांगि महलमैं गईं ।।
सिंहासनथित माय निहार । करि प्रनाम कीनों जैकार ।।१३४।।

दोहा ।

जननीदेह सुभावसौं, अतिनिर्मल अविकार ।।
ताहि कुलाचलवासिनी, और करैं सुचि सार ।।१३५।।

कृष्णपाख वैशाख दिन, दुतिया निसि-अवसान ।।
विमल विशाखा नखतमैं, बसे गर्भ जिन आन ।।१३६।।

जथा सीप संपुट विषैं, मोती उपजे आन ।।
त्योंही निर्मल गर्भमैं, निराबाध भगवान ।।१३७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भ बसैं पर गर्भतैं, बरतैं भिन्न सदीव ।।
घटतैं घटवरती गगन, क्यों नहिं भिन्न अतीव ।।१३८।।

चौपाई ।

तब जिन पुन्यपवनसे हले । चउबिध सुरके आसन चले ।।
चिहन देख इंद्रादिकदेव । जानो अवधिज्ञान-बल भेव ।।१३९।।

जिनवर आज गर्भ अवतरे । यह विचार उर आनंद भरे ।।
चढ़ि विमान परिवार समेत । चले गर्भकल्यानक हेत ।।१४०।।

जयजयकार करत बहुभाय । उच्छव-सहित पिताघर आय ।।
मातपिता आसन पर ठये । कंचन-कलस नहावत भये ।।१४१।।

गर्भमध्यवरती भगवान । प्रनमैं देव धरो मन ध्यान ।।
गीत निरत बाजित्र बजाय । पूजा भेंट करी सिर नाय ।।१४२।।

यों सुरगन सब साधि नियोग । गये गेह करि कारज जोग ।।
इन्द्रराजकौ आयस पाय । रुचकवासिनी देवी आय ।।१४३।।

जथाजोग सब सेवा करैं । छिन छिन जिन-जननी-मन हरैं ।।
रुचक-दीप तेरहमो जहाँ । रुचकनाम पर्वत है तहाँ ।।१४४।।

सो चौरासी सहस प्रमान । इतने जोजन उन्नत जान ।।
इतनो ही विस्तीरन धार । दीप मध्यसों बलयाकार ।।१४५।।

ताके सिखर कूट बहु लसैं । दिसाकुमारी तिनमैं बसैं ।।
ते सब सेवन आवैं माय । यह नियोग इनकौ सुखदाय ।।१४६।।

कुसुमलता ।

आईं भक्ति नियोगिनि देवी, जिन जननीकी सेव भजैं ।।
कोई न्हान-विलेपन ठानैं, कोई सार सिंगार सजैं ।।१४७।।

कोई भूषण वसन समप्पैं, कोई भोजन सिद्ध करैं ।।
कोई देय तंबोल रवाने, कोई सुंदर गान करैं ।।१४८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई रतन सिंहासन थापैं, कोई ढालैं चमर बरो ।।
कोई सुन्दर सेज बिछावैं, कोई चापैं चरन करो ।।१४९।।

कोई चन्दनसौं घर सींचैं, सारे महल सुवास करी ।।
कोई आंगन देय बुहारी, झारैं फूल-पराग परी ।।१५०।।

कोई जलक्रीडा कर रंजैं, कोई बहुबिध भेष किये ।।
कोई मनि-दर्पन कर धारैं, कोई ठाड़ी खड़ग लिये ।।१५१।।

कोई गूंथि मनोहर माला, आवैं आन सुगंध खरी ।।
कोई कलपतरोवरसौं ले, फल फूलनकी भेंट धरी ।।१५२।।

कोई काव्य कथारस पोखैं, कोई हास्य विलास ठवैं ।।
कोई गावैं बीन बजावैं, कोई नाचत सीस नवैं ।।१५३।।

दोहा ।

इह बिध सेवा करत नित, नवैं मास सुभ स्रेय ।।
प्रस्न करैं सुरकामिनी, भाता उत्तर देय ।।१५४।।

अंतरलापि पहेलिका, बहिरलापिका एव ।।
बिंदुहीन निरहोठ पद, क्रियागुप्त बहुभेव ।।१५५।।

इत्यादिक आगम-उकत, अलंकारकी जात ।।
अर्थगूढ़ गंभीर सब, समझावैं जिन-मात ।।१५६।।

चौपाई ।

तुमसी त्रिया कौन जग आन । तीर्थंकर सुत जनै महान ।।
जगमैं सुभट कौनसे माय । जे नर जीतैं विषय कषाय ।।१५७।।

कौन कहावे कायर दीन । इन्द्री-मद-मेटन बलहीन ।।
पंडित कौन सुमारग चलै । दुराचार दुर्मारग दलै ।।१५८।।

माता मूरख कौन महंत । विषयी जीव जगत जावंत ।।
कौन सत्पुरुष नरभव धार । जो साधै पुरुषारथ चार ।।१५९।।

कौन कापुरुष कहिये मर्म । जो सठ साध न जानै धर्म ।।
धन्य कौन नर इस संसार । जोबन समै धरै व्रतभार ।।१६०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धिक किनकौं कहिये सर्वंग । जे धरि करैं प्रतिग्या भंग ।।
कौन जीवके बैरी लोय । काम क्रोध हैं और न कोय ।।१६१।।

जननी जगमैं कौन मलीन । पातक-पंक-मलिन मतिहीन ।।
कहो कौन नर नित्त पवित्त । ब्रह्मचर्यधारी दिढ़ चित्त ।।१६२।।

कौन पसू मानुष आकार । जिनके हिरदै नाहिं विचार ।।
अंध कौन जो देव अदेव । कुगुरु सुगुरुकौ भेद न भेव ।।१६३।।

बधिर कौनसे उत्तर देह । जैनसिधाँत सुनै नहिं जेह ।।
मूक नाम नर कैसैं लहै । जो हित सांच वचन नहिं कहै ।।१६४।।

लाँबी भुजा कौन करहीन । जिनपूजा मुनिदान न दीन ।।
कौन पाँगले पाँव समेत । जे तीरथ परसैं न अचेत ।।१६५।।

कौन कुरूप जननि कहु एह । सीलसिंगार बिना नर जेह ।।
वेग कहा करिये बड़भाग । दिच्छागहन जगतकौ त्याग ।।१६६।।

मित्र कौन हितवंचक होय । धर्म दिढ़ावै आलस खोय ।।
सत्रु कौन जो दिच्छा लेत । विघन करै परभव दुखहेत ।।१६७।।

जियकौं कौन सरन है माय । पंच परमगुरु सदा सहाय ।।
इहिबिध प्रस्न करैं सुरनारि । माता उत्तर देहिं विचारि ।।१६८।।

वामादेवी सहज प्रवीन । सकल मरम जानै गुनलीन ।।
पुरुष-रतन उर अन्तर बहै । क्यों नहि ग्यान अधिकता लहै ।।१६९।।

दोहा ।

निबसैं निर्मल गर्भ मैं, तीन ग्यान-गुनवान ।।
फटिक महलमैं जगमगैं, ज्यों मनि दीप महान ।।१७०।।

उदयवान दिनकर-समय, पूर्व दिसा छबि जेम ।।
त्रिभुवनपति-सुत उर धरैं, सोहत जननी एम ।।१७१।।

गर्भभार व्यापै नहीं, त्रिबली भंग न होय ।।
देह न दीखै पीतछबि, और विकार न कोय ।।१७२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्यौं दर्पन प्रतिबिंबसौं, भारी कह्यौ न जाय ।।
त्यों जिनपतिके गर्भसौं, खेद न पावै माय ।।१७३।।

कलप लतासी लसत अति, जननी छबि-संयुक्त ।।
मंदहास कुसुमित भई, अब फलिहै फल पुत्त ।।१७४।।

देवराजके वचनसौं, अहनिस हरखत अंग ।।
अलखरूप सेवै सची, लिये अपछरा संग ।।१७५।।

पूरबवत नवमास लों, पंचाचरज अनूप ।।
अस्वसेन भूपालघर, किये धनद सुखरूप ।।१७६।।

यों सुखसौं निसद्दिन गये, खेद नाम कहिं नाहिं ।।
यह सब पुन्य-प्रभाव है, यही रहस इसमाहिं ।।१७७।।

इतिश्रीपार्श्वपुराणभाषायां गर्भावतारवर्णनं नाम
पञ्चमोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठा अधिकार

श्री जिनेन्द्र जन्मोत्सव वर्णन।

दोहा।

रागादिक जलसौं भर्‍यौ, तन तलाब बहु भाय ॥
पारस-रवि दरसत सुखै, अघ-सारस उड़ि जाय ॥१॥

गर्भ मास पूरन भये, नभ निर्मल आकार ॥
पौष मास एकादसी, स्याम पच्छ सुभ बार ॥२॥

वामादेवी-पूर्व-दिसि, जनम्यौ जिनवर-भान ॥
मुदित भयौ त्रिभुवन-कमल, असुभ तिमिर-अवसान ॥३॥

अस्वसेन नृप उदयगिरि, उगयौ बाला दिनेस ॥
तीन ग्यान-किरनावली, लिये जगत परमेस ॥४॥

पद्धड़ी

जनम्यौ जब तीर्थंकर कुमार। तिहुँ लोक बढ्यौ आनँद अपार ॥
दीखै नभनिर्मल दिसि असेस। कहिं आंधी मेह न धूलि लेस ॥५॥

अति सीतल मंद सुगंधि वाय। सो बहन लगी सुख सांति-दाय ॥
सब सुजन लोक हरषे विसेस। ज्यों कमल-खंड प्रगटत दिनेस ॥६॥

घंटा घन गरजे देवलोक। ज्योतिषिघर केहरि-नाद थोक ॥
भवनालय बाजे सहज संख। बिंतर-निवास भेरी असंख ॥७॥

ये अनहद बाजे बजे जान। जिनराज-जनम अतिसय महान ॥
बहु कलपतरोवर पहुपवृष्टि। स्वयमेव करन लागे विसिष्ट ॥८॥

इंद्रासन कांपे अकसमात। ये करन किधौं सारथ (?) सुजात ॥
जिन जनम भयौ भूलोकमाहिं। उच्चासन अब तुम जोग नाहिं ॥९॥

आनम्र भये मनि-मुकुट एम। श्रीजिन प्रति करत प्रनाम जेम ॥
ये चिहन देखि इंद्रादि देव। तब अवधिग्यान-बल जान भेव ॥१०॥

निरधार बनारसि-नगर-थान। तीरथपति जनम्यौ आज आन ॥
प्रभु जन्मकल्यानक करन काज। उद्यम आरंभ्यौ देवराज ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवार सहित सब इंद्रनाम । आये मिलि प्रथम सुरेंद्र-धाम ।।
नानाबिध बाहन चढ़े जेह । जिन-भगति-सलिल-सिंचत सुदेह ।।१२।।

सप्तांग सैन तब चली एम । यह महा-जलधिकी लहर जेम ।।
हाथी रथ पायक वृषभ बाज । गायनि नर्तकि सेना-समाज ।।१३।।

एकेक सैनमैं सात कच्छ । तिहि माहिं प्रथम चउ असी लच्छ ।।
फिर दुगुन दुगुन सात लों जान । इस भांत सात सेना महान ।।१४।।

सौ कोर और छैकोर जोरि । अठसट्ठ लाख ऊपर बहोरि ।।
यह एकहस्ति सेना प्रमान । ऐसी ही सब सातौं समान ।।१५।।

तहँ नागदंत सुर आभियोग । सो करह विक्रिया निजनियोग ।।
ताप्रति आग्या दीनी सुरिंद । तिन कीनौं ऐरावत गइन्द ।।१६।।

लख जोजन मान मतंगईस । अति उन्नत देह उतंग सीस ।।
सुभ सेत-वरन मन-हरन काय । लीलागति धारै ललित पाय ।।१७।।

मद-जीवन-कलित कपोल स्याम । नख विद्रुमवरण मनोभिराम ।।
सब लसत सुलच्छन अंग अंग । नहिं गिनी जाहिं जिस छबितरंग ।।१८।।

गंभीर घनाघनघोष जास । बहु सुंदर सुंड सुगंध सांस ।।
सो कामसरूपी कामगौन । जा देखैं मोहत तीन भौन ।।१९।।

घनघोरत घंटा लंबमान । माने घूंघुरमाला कंठथान ।।
सोवनपाखर[१] (?) सो दिपै देह । संपाजुत मानौं सरद-मेह ।।२०।।

सौ वदन विराजत सोभवंत । एकेक वदनमैं आठ दंत ।।
प्रतिदंत सरोवर एक दीस । सरसरहँ कमलिनी सौ पचीस ।।२१।।

एकेक कमलिनी प्रति महान । पच्चीस मनोहर कमल ठान ।।
प्रतिकमल एकसौ आठ पत्र । सोभा वरनी नहिं जाय तत्र ।।२२।।

पत्रनपर नाचें देवनारि । जग मोहत जिनकी छबि निहारि ।।
नव नवरस पोषैं करत गान । लावन्य-जलधि-बेला समान ।।२३।।

---

१ सोवनपातर = स्वर्णपात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिस हाथी ऊपर सचीसंग । सौधर्म सुरगपति मुदित अंग ।।
आरूढ भयौ अति दिपत एम । उदयाचल-मस्तक भानु जेम ।।२४।।

चंद्रोपम चामर छत्रसीस । दसजाति कलप-सुर-सहित ईस ।।
ईसानप्रमुख इमि देवराज । निज निज बाहनकौं चले साज ।।२५।।

परिजन-समेत उर हरष भाव । जिन जनमकल्यानक करन चाव ।।
बाजे सुरदुंदभि विबिध भेव । जयकार करैं मिलि सकल देव ।।२६।।

उपज्यौ कोलाहल गगन थान । सब दिसि दीखैं बाहन विमान ।।
आकास सरोवर अति गँभीर । इंद्रादि अमर तन तेज नीर ।।२७।।

तहां विकसत मुख अपछरा एम । यह खिल्यौ कमलिनी-बाग जेम ।।
इहि बिध देवागम भयौ जान । अवतरे बनारस नगर थान ।।२८।।

चंद्रादि जोतिषी पंच जात । दस भेद भवनवासी विख्यात ।।
पुनि आठ जातके वान देव । सब आये इन्द्र-समेत एव ।।२९।।

निज निज बाहन चढ़ि सपरिवार । जिन जन्म-महोच्छव हियैं धार ।।
तब पुर-प्रदच्छिना सुरन दीन । अति हरखत उर जयकार कीन ।।३०।।

बन बीथी मारग गगन रोक । सब ठाड़े देवी देव थोक ।।
सब सक्र सची मिलि भूप-गेह । आये घर आंगन भरो तेह ।।३१।।

तब इंद्रबधू अति रंजमान । सो गई गुपत जिन-जनमथान ।।
देखी जिनमात सपुत्त ताम । परदच्छिन दै किनौं प्रनाम ।।३२।।

सुत-रागरँगी सुख सेज मांझ । ज्यों बालक-भानु समेत सांझ ।।
कर जोरि जुगल सिर नाय नाय । थुति कीनी बहु जानै न माय ।।३३।।

सुखनींद रची तब सची तास । मायामय राख्यौ पुत्र पास ।।
करकमलन बालक-रतन लीन । जिन कोटि भानु-छबि छीन कीन ।।३४।।

सुख उपजै जो प्रभु परस देह । कवि-वानीगोचर नाहिं तेह ।।
प्रभुकौ मुखवारिज देख देख । हरखै सुररानी उर विसेख ।।३५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसु मंगलदरव विभूति सार । दिस दिव्यकुमारी अग्रचार ।।
इहिबिध सौधर्मसुरेसनार । आन्यौ सिवकन्या-वर कुमार ।।३६।।

देख्यौ हरि बालकचंद जाम । आनंद-जलधि उर बढ़्यौ ताम ।।
सिर नाय इंद्र निज बार बार । थुति कीनी कर जुग सीस धार ।।३७।।

छबि देखि तृपति नहिं होय लेस । तब सहस आंख कीनी सुरेस ।।
करि नमस्कार निजगोद लीन्ह । ईसान इंद्र सिर छत्र दीन्ह ।।३८।।

तहाँ सनतकुमार महेंद्र सोय । ए चामर ढालैं इंद्र दोय ।।
ब्रह्मादि सुरगवासी सुरेस । जय नंद वर्ध बोलैं विसेस ।।३९।।

नाचैं सुर-रमनी रूपखान । गंधर्व करैं जिन सुजस गान ।।
सुरबाजे बाजैं बहुप्रकार । कर धरहिं किन्नरी बीन सार ।।४०।।

केई सुर श्रीजिन सुभग भेष । देखैं भरि लोचन निर्निमेष ।।
केई यौं भाषैं सुर समाज । हम देव-जन्म-फल लह्यौ आज ।।४१।।

केई सरधायुत भये देव । मिथ्यात महाविष वम्यौ एव ।।
इस भांति चतुरबिध देवसंघ । सब चले जोतिषी-पटल लंघ ।।४२।।

दोहा ।

जोजन सहस निन्यानवै, सुरगिरि-सिखर उतंग ।।
गये सकल सुरगन तहां, भूषन-भूषित अंग ।।४३।।

चौपाई ।

महामेरुके मस्तक-भाग । पांडुकबन बहु धरै सुहाग ।।
जोजन सहस जासु विस्तार । सुर चारन खग करैं बिहार ।।४४।।

चहुंदिसि चार जिनालय तहां । सघन सासते तरुवर जहां ।।
मध्यचूलिका मुकट सरीस । सो उतंग जोजन चालीस ।।४५।।

बारह जोजन जड़ विस्तार । आठ मध्य अर ऊपर चार ।।
जाके ऊपर रजक विमान । रोमांतर नरछेत्र प्रमान ।।४६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिस ईसानदिसा सुभ थान । मनिमय सिला सासती जान ।।
पांडुकमाम फटिक उनहार । आकृति अर्ध चंद्रमाकार ।।४७।।

सौ जोजन आयाम अभंग । विस्तर आधी आठ उतंग ।।
सुर विद्याधर पूजत नित्त । भरतखंड-जिन-न्हौन-पवित्त ।।४८।।

तहां हेम-सिंहासन सार । रत्नजड़ित सो बलयाकार ।।
धनुष पांचसौ उन्नत जोय । भूमिभाग विस्तीरन सोय ।।४९।।

ऊपर जास अर्ध बिस्तार । जाके तेज मिटै अँधियार ।।
तिसहीपर पदमासन साज । पूरबमुख थापे जिनराज ।।५०।।

इस औसर सोहैं इमि ईस । मानौं मेघ रतनगिरि-सीस ।।
धुजा कलस दर्पन भृंगार । चमर छत्र सुप्रतिष्ठक तार ।।५१।।

मंगल दर्व मनोहर जहां । धरे अनादि-निधन ये तहां ।।
आसन दोय उभय दिस और । जुगलइंद्र ठाड़े तिहि ठौर ।।५२।।

चारौं दिस चारौं दिगपाल । जथाजोग जिन-मज्जन काल ।।
सची सुरेंद्र अपछरा-थोक । सब ठाड़े पांडुकबन रोक ।।५३।।

चौबिध देव खड़े चहुँपास । जनम-न्हौन देखन हुल्लास ।।
कियौ महामंडप हरि तहां । तीन लोक जन निवसैं जहां ।।५४।।

कल्पकुसुम-माला मनहार । लटकैं मधुप करैं झंकार ।।
सुर वाजित्र बजैं बहुभाय । सुरभि सुगंध रही महकाय ।।५५।।

मंगल मिल गावैं सब सची । नाचैं सुर-वनिता रस-रची ।।
तब मज्जन आरंभ विसेस । उद्यम कियौ प्रथम अमरेस ।।५६।।

दोहा ।

तहां कुबेर रतन खची, रची पैडका पंत ।।
मेरु सिखरसौं सोहिये, छीरोदधि परजंत ।।५७।।

सुर-श्रेणी सोपान-पथ, पंचम सागर जाय ।।
भर लाई कंचन-कलस, चंदन-चरचित काय ।।५८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोजन एक प्रमान मुख, वसु जोजन गंभीर ।।
यह मरजादा कलसकी, जिनशासनमैं बीर ।।५९।।

मुकतमाल-मंडित लसैं, कंचन-कलस महंत ।।
नभ-वनिताके उरज ये, यों अति सोभावंत ।।६०।।

चौपाई ।

सहस भुजा सुरपति तब करी । भूषन-भूषित सोभा भरी ।।
इस औसर हरि सोहै एम । भूषनांग सुरतरुवर जेम ।।६१।।

कलस हाथ हरि लीनैं जाम । भाजनांग सम सोभा ताम ।।
तीन बार किनौ जयकार । कलसोद्धारन मंत्र उचार ।।६२।।

इहिबिध श्रीसौधर्माधीस । ढाले कलस स्वामिके सीस ।।
तब सब इंद्र कियौ जिनन्हौन । अतुल उछाव बढ़्यौ जगभौन ।।६३।।

महा धार जिनमस्तक ढरी । मानौं नभगंगा अवतरी ।।
मुदित असंख अमरगन तबै । जैजैकार कियौ मिलि सबै ।।६४।।

उपज्यौ अति कोलाहल सार । दसदिस बधिर भईं तिहिं बार ।।
भयौ असम औसर इहिं भाय । वचनद्वार बरन्यौ नहिं जाय ।।६५।।

दोहा ।

जा धारासौं गिरि सिखर, खंड खंड हो जाय ।।
सो धारा जिनदेहपै, फूल-कली सम थाय ।।६६।।

अप्रमान वीरजधनी, तीर्थंकर प्रभु होय ।।
तातैं तिनकी सकतिकौं, उपमा लगै न कोय ।।६७।।

नीलबरन प्रभु देहपर, कलस-नीरछबि एम ।।
नीलाचल-सिर हेमके, बादल बरसैं जेम ।।६८।।

चली न्हौनतै नीरकी, उछल छटा नभमाहि ।।
स्वामिसंग अघ बिन भई, क्यों नहिं ऊरध जाहि ।।६९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्हौन-छटा तिरछी भई, तिन यह उपमा धार ।।
दिगवनिता-मुख सोहियै, करनफूल उनहार ।।७०।।

सोरठा ।

जिन-तन-परस पवित्त, भई सकल जग-सुचिकरन ।।
सो धारा मम नित्त, पाप हरो पावन करो ।।७१।।

चौपाई ।

यों सुरेंद्र मज्जनबिधि ठान । फिर कीनौं गंधोदक न्हान ।।
सो जल लेय विनय विस्तरी ।सांतिपाठ पढ़ि पूजा करी ।।७२।।

सक्र सची सुर आनंद भरे । यथाजोग सब कारज करे ।।
परदच्छिन दीनी बहुभाय । बारंबार नये सिरनाय ।।७३।।

हरिगीत ।

सौधर्मपति अभिषेक कारक, न्हौनपीठ सुदंसनो ।
गंधर्व गायक निरतकारक, अपछरा-जन संसनो ।।
पंचम पयोनिध न्हौन-कुंड, असंख सुर सेवक जहां ।।
तिस जन्म-मंगलकी बड़ाई, कहन समरथ बुध कहां ।।७४।।

चौपाई ।

जन्म न्हौन बिधि पूरन भई । सकल सुरासुर देवनि ठई ।।
अब इंद्रानी जिनवर अंग । निर्जल कियौ वसन-सुचिसंग ।।७५।।

कुंकुमादि लेपन बहु लिये । प्रभुके देह विलेपन किये ।।
इहि सोभा इस औसरमांझ । किधौं नीलगिरि फूली सांझ ।।७६।।

और सिंगार सकल सह कियौ । तिलक त्रिलोकनाथके दियौ ।।
मनिमय मुकुट सची सिर धर्‍यौ । चूड़ामनि माथे विस्तर्‍यौ ।।७७।।

लोचन अंजन दियौ अनूप । सहज स्वामिदृग अंजितरूप ।।
मनि कुंडल कानन विस्तरे । किधौं चंद सूरज अवतरे ।।७८।।

कंठ कंठिका मोतीहार । मुकता-मनि झूला उनहार ।।
भुज-भूषन-भूषित भुज करी । कटक मुद्रिका सोभित खरी ।।७९।।

कटिभूषन कीनौं कटि-थान । मनिमय छुद्र घंटिकावान ।।
पग नेवर पहराये सार । जिनमैं रतन झलक झंकार ।।८०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

अंगअंग आभरनजुत, यह उपमा तिहिं काल ।।
सुरतरु-सम प्रभु सोहिये, भूषनभूषित-डाल ।।८१।।

चौपाई ।

तब इंद्रादि लगे थुति करन । जय जिनवर सब आरत-हरन ।।
त्रिभुवन-भवन-दीप उनहार । धन्य देव तेरो अवतार ।।८२।।

जय श्रीअस्वसेन कुलचंद । वामानंदन जोति अमंद ।।
सुखसागरके वर्धनहार । सब जग श्रेय-सांति-दातार ।।८३।।

तुम जग भ्रमनासन अवतरे । हमसे दास महासुख भरे ।।
बिन रवि-उदय तिमिर क्यों जाय । कैसे कमल-बाग विकसाय ।।८४।।

मिथ्यामत रजनी अतिघोर । मूसैं धर्म कुलिंगी चोर ।।
जो प्रभुजन्म-प्रभात न थाय । तो किमि प्रजा बसै सुखपाय ।।८५।।

ये अनादि संसारी जीव । बिलखैं भव-गद-ग्रसे अतीव ।।
सो दुखमैंटन दयानिधान । राजवैद जनमै भगवान ।।८६।।

भरम कूप वरती बहु लोय । काढ़नहार तिन्हैं नहिं कोय ।।
श्रीमुख वचन लेज-बलधार । अब उद्धार लहैं निरधार ।।८७।।

आप परम पावन परमेस । औरनकौं सुचि करहु विशेष ।।
ज्यों सरि सेत प्रभा तन धरै । सेत सरूप सबनकौं करै ।।८८।।

बिन सनान तुम निर्मल नित्त । अंतर बाहज सहज पवित्त ।।
हम मज्जन बिधि कीनी आज । निज पवित्र कारन जिनराज ।।८९।।

तुम जगपति देवनके देव । तुम जिन स्वयंबुद्ध स्वयमेव ।।
तुम जग रच्छक तुम जगतात । तुम बिनकारन-बंधु विख्यात ।।९०।।

तुम गुनसागर अगम अपार । थुतिकर कौन जाय जन पार ।।
सूच्छम ग्यानी मुनि नहिं तरैं । हमसे मंद कहा बल धरैं ।।९१।।

नमो देव असरन-आधार । नमो सर्व अतिसय भंडार ।।
नमो सकल सिव-संपति-करन । नमो नमो जिन तारन-तरन ।।९२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

इहि बिध इंद्रादिक अमर, सुर-पदवी-फल लेय ।।
जन्म-न्हौन-विधि कर चले, मानौं निज सुभ श्रेय ।।९३।।

जन्ममहोच्छव देख कर, सुरपतिकी परतीत ।।
बहु सुर सरधानी भये, तजि सरधा विपरीत ।।९४।।

चौपाई ।

तब सब देव जनमपुर थान । पूरवली बिधि कियौ पयान ।।
चढ़्यौ इंद्र ऐरावत सीस । गोद लिये त्रिभुवनपति ईस ।।९५।।

पूरबवत दुंदभि धुनिगाज । वे ही गीत निरत सब साज ।।
आये जय जय करत असेस । पिताभवन कीनौं परवेस ।।९६।।

मनिमय आंगनमैं हरि आप । हेम-सिंहासन पर प्रभु थाप ।।
अस्वसेन भूपति तिहिं बार । देख्यौ नंदन नयन पसार ।।९७।।

तेजपुंज निरुपम छबि देह । रोमांचित तन बढ़्यौ सनेह ।।
माया नींद सची तब हरी । जिन-जननी जागी सुखभरी ।।९८।।

भूषन-भूषित कांति विसाल । भर लोयन निरख्यौ जिनबाल ।।
अति प्रमोद उर उमग्यौ तबै । पूरन भये मनोरथ सबै ।।९९।।

तब सुरेस रोमांचित काय । मात पिता पूजे मन लाय ।।
भूषन वसन भेंट बहु धरी । हाथ जोरि जुग थुति विस्तरी ।।१००।।

तुम जगमैं उदयाचल भूप । पूरब दिसि देवी सुचिरूप ।।
उदय भये त्रिभुवन-रवि जहां । तुम महिमा वरनन बुधि कहां ।।१०१।।

धनि धनि अस्वसेन भूपाल । जिनके जगगुरु जनम्यौ बाल ।।
कीरतबेल अधिक तुम बढ़ी । तीन-लोक-मंडप सिर चढ़ी ।।१०२।।

धनि वामादेवी जगमाय । जिन जायौ नंदन जगराय ।।
तीन-लोक-तिय-सृष्टि-सिंगार । धनि जननी तेरो अवतार ।।१०३।।

तुम सम जगमैं और न आन । जिनदेवल सम पूज्य प्रधान ।।
यों थुतिकरि हरि हिये प्रमोद । बाल-दिवाकर दीनौं गोद ।।१०४।।

कही सकल पूरबली कथा । मेरु-महोच्छव कीनौं जथा ।।
तब निज नगरविषैं भूपाल । जन्म उछाह कियौ तिहिंकाल ।।१०५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरषत सब पुरजन परिवार । घर घर भये मंगलाचार ।।
घर घर कामिनि गावैं गीत । घर घर होंय निरत-संगीत ।।१०६।।

मंगलीक बाजे बहु भेव । बाजन लगे सकल सुखदेव ।।
श्रीजिनभवन न्हौन विस्तार । किये सकल मंगल आचार ।।१०७।।

छिरक्यौ चंदन नगर मंझार । रतन साथिया धरे संवार ।।
जाचक-दान सुजन-सनमान । जथाजोग सब रीति-विधान ।।१०८।।

इहि बिध अस्वसेन नरनाह । कीनौ पुत्र-जनम उच्छाह ।।
पूरन-आस भये सब लोय । दुखी दीन दीखै नहिं कोय ।।१०९।।

दोहा ।

उदय भयौ जिन-चंद्रमा, कुल-नभ-तिलक महंत ।।
सुख-समुद्र बेला तजी, बढ़्यौ लोक-परजंत ।।११०।।

चौपाई ।

तब बहु देवन संग विसेस । आनंद-नाटक ठयौ सुरेस ।।
करै गान गंधर्व-समाज । समयजोग सब बाजे साज ।।१११।।

देखैं अस्वसेन नरनाथ । पुत्र-सहित सब परिजन साथ ।।
प्रथम रूप नव भव दरसाय । पुहपांजुलि खेपी सुरराय ।।११२।।

तांडव नाम निरत आरंभ । कियौ जगतजन करन अचंभ ।।
नट सरूप धार्यौ अमरेस । रंगभूमि कीनौं परवेस ।।११३।।

मंगलीक सिंगार संवार । सब संगीत वेद अनुसार ।।
ताल मान विधिसहित सुभाय । रंग-धरा-पर फेरै पाय ।।११४।।

करैं कुसुम-बरसा नभ देव । देखि इंद्रकी भक्ति सुभेव ।।
बीना मुरज बांसली ताल । बाजे गेह गीतकी चाल ।।११५।।

करैं किंनरी मंगलपाठ । बिरियां जोग बन्यौ सब ठाठ ।।
नाचै इंद्र भमैं बहु भाय ।। मोरै हाथ कंठ कटि पाय ।।११६।।

अद्भुत तांडवरस तिहिं बार । दरसावै जन अचरजकार ।।
सहस भुजा हरि कीनी तबै । भूषन-भूषित सोहैं सबै ।।११७।।

धारत चरन चपल अति चलैं । पहुमी कांपै गिरिवर हलैं ।।
भमै मुकुट चकफेरी लेत । ताकी रतनप्रभा छबि देत ।।११८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलयाकृति ह्वै झलकै सोय । चक्राकार अगनि जिमि होय ।।
छिनमैं एक छिनक बहुरूप । छिन सूच्छम छिन थूलसरूप ।।११९।।

छिनमैं निकट दिखाई देय । छिनमैं दूर देह धर लेय ।।
छिन आकासमाहिं संचरै । छिनमैं निरत भूमि पर करै ।।१२०।।

छिन छूवै तारावलि जाय । छिनक चंदसौं परसै काय ।।
इंद्रजालवत यों अमरेस । दरसाई निज रिद्धि विसेस ।।१२१।।

हाथ अंगुलिनपै अपछरा । नाचैं रूप रतनकी धरा ।।
अंग अंग भूषन झलकाहिं । विकसत लोचन मुख मुसकाहिं ।।१२२।।

निरत भेदबिधि धारैं पांव । करैं कटाच्छ दिखावैं भाव ।।
बहुबिध कला प्रकासैं सार । सुरकामिनि दामिनि-उनहार ।।१२३।।

तिनसंजुत हरि सुरतरु एम । कलपलता-गनबेढ़्यौ जेम ।।
यों नाटकबिधि ठान अनूप । तिहुंजग सक्र किये सुखरूप ।।१२४।।

स्वामि-जनम-अतिसय-परताप । जिनवर-पिता सभापति आप ।।
इंद्र महानट नाचै जहां । तिस अवसर-बरनन बुधि कहां ।।१२५।।

तब तहां मातपिताकी साख । पारस नाम सकल सुर भाख ।।
राखि सुरासुर सेवा-जोग । चले देव सब साधि नियोग ।।१२६।।

दोहा ।

इहिबिध इंद्रादिक अमर, जन्मकल्यानक ठान ।।
बहुबिध पुन्य उपायकै, पहुंचे निज निज थान ।।१२७।।

हरगीति ।

इंद्रादि जन्म-सनान जिनकौ, करन कनकाचल चढ़े ।
गंधर्व देवन सुजस गायौ, अपछरा मंगल पढ़े ।।

इहबिध सुरासुर निज नियोगै, सकल सेवा-बिधि ठई ।
ते पासप्रभु मुझ आस पुरवो, सरन सेवकने लई ।।१२८।।

इतिश्रीपार्श्वपुराणभाषायां जिनेन्द्रजन्मोत्सववर्णनं नाम

षष्ठोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवाँ अधिकार

भगवत् वैराग्य प्राप्त दीक्षा कल्याणक वर्णन ।

दोहा ।

पारस प्रभु तजि औरकौं, जे नर पूजनजाहिं ।।
कलपबिरछकौं छांड़िकैं, बैठैं थूहर छाहिं ।।१।।

चौपाई ।

अब जिन बालचंद्रमा बढ़े । कोमल हास-किरन मुख कढ़े ।।
छिन छिन तात-मात-मन हरे । सुखसमुद्र दिन दिन विस्तरे ।।२।।

अम्रत इंद्र अंगूठे देय । वही पोष पयपान न लेय ।।
देवी धाय हरष मन धरैं । मज्जन-मंडन-बिधि सब करैं ।।३।।

केई मनिभूषन पहराय । करैं अलंकृत प्रभुकी काय ।।
केई कामिनि करैं सिंगार । श्रीमुखचंद्र निहार निहार ।।४।।

केई रहसवती तिय आय । हस्त-कमलसौं लेंय उठाय ।।
मनिमय आंगन-मांझ अनूप । बिचरैं जिनपति बालसरूप ।।५।।

बहुबिध देवकुमार मनोग । बालकरूप भये वयजोग ।।
घुटियां गमन करैं तिनसाथ । ज्यों नछत्रगनमैं निसि-नाथ ।।६।।

कबहीं सैनासन सोवंत । ऊपर दिढ़ जिन यौं जोवंत ।।
अजौं मुक्ति मो केतक परैं । मानौं यह संका मन धरैं ।।७।।

कबहीं पुहुमीपै जिनराय । कंपित चरन ठवैं इहि भाय ।।
सहै कि ना धरती मुझभार । संकैं उर उपमा यह धार ।।८।।

कबहीं स्वामि उझकि उठि चलैं । विकसत मुख सब दुखकौं दलैं ।।
बांधैं मुठी अटपटे पाय । कैसे वह छबि बरनी जाय ।।९।।

कबहीं रतन-भीतमैं रूप ।झलकै ताहि गहैं जगभूप ।।
जिनसौं जिन न मिलैं सर्वथा । करत किधौं कहवत यह वृथा ।।१०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कबहीं रतन-रेत कर लेत । करैं केलि सुरकुमरसमेत ।।
कबहीं माय बिन रुदन करेय । देखैं फेरि विहँसि हँस देय ।।११।।

कबहीं छोड़ि सचीकी गोद । जननी-अंक जायँ मनमोद ।।
मातासौं मानैं अति प्रीति । बाल अवस्थाकी यह रीति ।।१२।।

यौं जिन बालक लीला करै । त्रिभुवनजन-मन-मानिक हरै ।।
क्रमसौं बालभारती नाम । श्रीमुखकमल लसी अभिराम ।।१३।।

अनुक्रम भई अंगबढ़वार । तब त्रिभुवनपति भये कुमार ।।
निरुपम कांति कला विग्यान । लावन रूप अतुल गुनथान ।।१४।।

मति-श्रुति-अवधि-ग्यानबल देव । जानैं सकल चराचर भेव ।।
सोमसुभाव सहज उपसंत । निर्मल छायक दरसनवंत ।।१५।।

इहिबिध आठ बरसके भये । तब प्रभु आप अनुव्रत लये ।।
देवकुमार रहैं संग नित्त । ते छिन छिन रंजैं जिन-चित्त ।।१६।।

कबहीं गज तुरंग तन धरैं । तिनपै चढ़ि प्रभु जन-मन हरैं ।।
कबहीं हंस मोर बन जाहिं । तिनसौं जगपति केलि कराहिं ।।१७।।

कबहीं जलक्रीड़ाथल गमैं । कबहीं बनबिहारभू रमैं ।।
कबहीं करैं किंनरी गान । सो प्रभु सुजस सुनैं निज कान ।।१८।।

कबहीं निरत ठवैं सुर-नार । देखैं जिन लोचन सुखकार ।।
कबहीं काव्यकथारस ठान । क़रैं गोठ जिन बुधि बलवान ।।१९।।

बिना सिखाये बिन अभ्यास । सब विद्या सब कलानिवास ।।
यों सुख अनुभव करत महान । भये पास-जिन जोबनवान ।।२०।।

दोहा ।

संपूरन जोबन समय, प्रभुतन सोहै एम ।।
सहज मनोहर चांदकी, सरद-समय छबि जेम ।।२१।।

चौपाई ।

प्रभुके अंग पसेव न होय । सहज सदा मलवरजित सोय ।।
उज्जलवरन रुधिर जिमि खीर । सु समचतुरसंठान सरीर ।।२२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम सार-संहनन-सरूप । इंद्र-चंद्र-मनहरन अनूप ॥
बिनाहेत तन सहज सुवास । प्रिय-हित-वचन मधुर मुख जास ॥२३॥

अतुलदेह-बल धरत महान । सहस अठोतर लच्छनवान ॥
तिनके नाम लिखौं कछु जोय । पढ़त सुनत सुखसंपति होय ॥२४॥

हरिगीत ।

श्रीवच्छ संख सरोज स्वस्तिक, सक्र चक्र सरोवरो ।
चामर सिंहासन छत्र तोरन, तुरगपति नारी नरो ॥
सायर दिवायर कल्पबेली, कामधेनु धुजा करी ॥
वरवज्रवान कमान कमला, कलस कच्छप केहरी ॥२५॥

गंगा गऊपति गरुड़ गोपुर, बेणु बीणा बीजना ।
जुगमीन महल मृदंगमाला, रतन दीप दिपै घना ॥
नागेंद्र-भुवन विमान अंकुस, बिरछ सिद्धारथ सही ।
भूषन पटंबर हट्ट हाटक, चंद्र चूड़ामनि कही ॥२६॥

जम्बू तरोवर नगर सूवस (?) बाग जन-मन-भावना ।
नौनिधि नछत्र सुमेरु सारद, साल खेत सुहावना ॥
ग्रह मंगलाष्टक प्रातिहारज, प्रमुख और विराजहीं ॥
परमित अठोतर सहस प्रभुके, अंग लच्छन छाजहीं ॥२७॥

अंतर अनंती अतुल महिमा, कथन दूर रहो कहीं ।
बहिरंग गुनथुति करन जगमैं, सक्रसे समरथ नहीं ॥
अब और जनकी कौन गिनती, दीन पार न पावना ।
पर पासप्रभुकी सुजस-माला, पहिरि दास कहावना ॥२८॥

दोहा ।

सहस अठोतर लछन ये, सोभित जिनवरदेह ।
किधौं कल्पतरुराजके, कुसुम विराजत येह ॥२९॥

चौपाई ।

सुभ परमानूमय जिन अंग । नीलबरन नौ हाथ उतंग ॥
छबि बरनत नहिं पावैं ओर । त्रिभुवनजन-मन-मानिक-चोर ॥३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत-संवत्सर आव प्रमान । अतुल असाधारन गुनथान ।।
सत्रु मित्र ऊपर समभाव । दया-सरोवर सोम-सुभाव ।।३१।।

सागरसौं प्रभु अति गंभीर । मेरुसिखरसौं अधिकै धीर ।।
कांति देखि लाजै मिरगांक । तेज बिलोकि छिपै रवि रांक ।।३२।।

कल्पविरछसौं अधिक उदार । तिहुं-जगआसा पूरनहार ।।
यौं जिनगुनकौं उपमा कहीं । तीनकाल त्रिभुवनमैं नहीं ।।३३।।

दोहा ।

यों सुख निवसत पास जिन, सेवत कमला पाय ।।
सोलह बरस प्रमान प्रभु, भये जगत-सुखदाय ।।३४।।

सभा सिंहासन एक दिन , बैठे सहज जिनेंद्र ।।
सुर-नरमैं प्रभु यौं दिपैं, ज्यों उड़गनमैं चंद्र ।।३५।।

अस्वसेन भूपाल तब, बोले अवसर पाय ।।
नेह-सलिल भीजे वचन, सुनो कुमर जगराय ।।३६।।

एक राजकन्या बरो, करो उचित व्यवहार ।।
बंसबेल आगे चलै, सुख पावै परिवार ।।३७।।

नाभिराजकी आस ज्यौं, भरी प्रथम अवतार ।।
तथा हमारी कामना, पूरन करो कुमार ।।३८।।

पिता वचन सुनि प्रभु दियौ, प्रतिउत्तर तिहिं बार ।।
रिषभदेव सम मैं नहीं, देखौ हिये विचार ।।३९।।

मेरी सब सौ वर्ष थिति, सोलह भये बितीत ।।
तीस वर्ष संजम समय, फिर मत कहो पुनीत ।।४०।।

अल्पकाल थिति अल्प सुख, अल्प प्रयोजन काज ।।
कौन उपद्रव संग्रहै, समुझि देख नरराज ।।४१।।

सुन नरेंद्र लोचन भरे, रहे वदन बिलखाय ।।
पुत्र ब्याह-वर्जन वचन, किसे नहीं दुखदाय ।।४२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

इहिबिध मंदराग जिनराय । निवसैं सब जीवन सुखदाय ।।
पूरव कथित कमठचर सीह । पाप करत मानी नहिं चीह ।।४३।।

मुनि-हत्यावस दुर्गति गयौ । पंचम नरकवास सो लयौ ।।
सत्रह जलधि तहां दुख सहे । वचन-द्वार जो जाहिं न कहे ।।४४।।

थिति पूरन कर छोड़ी ठौर । सागर तीन भम्यौ फिर और ।।
पसुगति माहिं विपत बहु भरी । त्रस थावरकी काया धरी ।।४५।।

इहिबिध भयौ पाप अवसान । काहू जन्मक्रिया सुभ ठान ।।
महीपालपुर सोहै जहाँ । महीपाल नृप उपज्यौ तहां ।।४६।।

पारसप्रभुकी वामा माय । इनकौ पिता भयौ यह राय ।।
पटरानीके प्रानवियोग । उपज्यौ विरह बढ़्यौ चित सोग ।।४७।।

तपसी भेष धर्‍यौ दुख मान । पंचागनि साधै बनथान ।।
सीस जटा मृगछाला संग । भसम पीस लाई सब अंग ।।४८।।

भ्रमत बनारसिके उद्यान । आयौ कष्ट करत बिनग्यान ।।
इहि अवसर श्रीपार्स्वकुमार । गये सहज बन करन बिहार ।।४९।।

राजपुत्र बहु सुरगन साथ । गज आरूढ़ दिपैं जिननाथ ।।
कर सुछंद बनकेलि अनूप । चले नगरकौं आनँदरूप ।।५०।।

देख्यौ मगमैं जननी-तात । तपै पंचपावक-तप गात ।।
सो समीप प्रभुकौं अविलौय । चिंतै चित रोषातुर होय ।।५१।।

मैं समीप कुलवंत महंत । जननी-पिता पूज सब भंत ।।
अहो कुमरके यह अभिमान । विनय प्रनाम करै नहिं आन ।।५२।।

इतने ईंधन कारन जान । लकड़ी चीरन लग्यौ अयान ।।
हाथ कुल्हाड़ी लीनी जबै । हितमित वचन चये प्रभु तबै ।।५३।।

भो तपसी यह काठ न चीर । यामैं जुगल नाग हैं बीर ।।
सुनि कठोर बोल्यौ रिस आन । भो बालक तुम ऐसो ग्यान ।।५४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिहर ब्रह्मा तुम ही भये । सकल चराचर-ग्याता ठये ।।
मनै करत उद्धत अविचार । चीरयौ काठ न लाई बार ।।५५।।

ततखिन खंड भये जुगजीव । जैनी बिन सब अदय अतीव ।।
दया-सरोवर जिन तब कहै । तपसी वृथा गरब तू बहै ।।५६।।

ग्यान बिना नित काया कसै । करुना तेरे उर नहिं बसै ।।
तब सठ रोषवचन फिर चयौ । जननी जनकर तपसी भयौ ।।५७।।

करे न मदवस विनय विधान । और उलट खंडै मुझ आन ।।
पंच अगनि साधूं तन-दाह । रहूं एकपद ऊरध बाँह ।।५८।।

भूख प्यास बाधा सब सहूं । सूखे पत्र पारनैं गहूं ।।
ग्यानहीन तप क्यों उच्चरै । क्यों कुमार मुझ निंदा करै ।।५९।।

तब प्रभुवचन कहे हितकार । तुझ तपमैं हिंसा-अघभार ।।
छहों कायके जीव अनेक । नास होंहिं नित नाहिं विवेक ।।६०।।

जहां जीवबध होय लगार । तहां पाप उपजै निरधार ।।
पाप सही दुर्गति दुख देह । यातैं दयाहीन तप येह ।।६१।।

ग्यान बिना सब कायकलेस । उत्तम फलदायक नहिं लेस ।।
जैसे तुस खंडन (?) कन छार । यों अजान तप अफल असार ।।६२।।

अंध पुरुष वन-दौमैं दहै । दौर मरै मारग नहिं लहै ।।
त्यों अजान उद्यम करि पचै । भव-दावानलसौं नहिं बचै ।।६३।।

ऐसे ही किरिया बिन ग्यान । सो भी फलदायक नहिं जान ।।
जथा पंगु लोचनबल धरै । उद्यम बिन दावानल जरै ।।६४।।

तातैं ग्यान-सहित आचार । निहचै वांछित फल दातार ।।
इहि बिध जिनमतके अनुसार । करि उत्तम तप यह हठ छार ।।६५।।

मैं तुझ वचन कहे हितकार । तू अपने उर देखि विचार ।।
भली लगै सोई करि मित्त । वृथा मलीन करै मति चित्त ।।६६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

नाग जुगल सुनि जिन-वचन, क्रूर जीव अति निंद ।।
देह त्यागि ततखिंन भये, पदमावति धरनिंद ।।६७।।

नाग जुगलके भागकी, महिमा कही न जाय ।।
जिन-दरसन प्रापति भई, मरन समय सुखदाय ।।६८।।

चौपाई ।

घर आये श्री पार्सजिनंद । सुर-नर-नेत्र-कमलिनी-चंद ।।
समय पाय तपसी तजि देह । भयौ जोतिषी संवर तेह ।।६९।।

देखो जगमैं तप-परभाव । ग्यान बिना बांधी सुरआव ।।
जे नर करैं जैनतप सार । तिन्हैं कहा दुर्लभ संसार ।।७०।।

स्वामी मगन सुखोदधिमाहिं । हर्ष विनोद करत दिन जाहिं ।।
प्रभुके इष्ट-वियोग न होय । सोग-सँजोग न कबहीं कोय ।।७१।।

वाय पित्त कफ जनित विकार । सुपनै होय न सोच विचार ।।
जरा न व्यापै तेज न जाय । ना मुखकमल कभी कुम्हलाय ।।७२।।

होहि नहीं दुखकारन आन । पुन्य-उदधि बेला भगवान ।।
यों सुखभोग करत दिन गये । तब जिन तीस वर्षके भये ।।७३।।

नृप जयसेन अजुध्याधनी । भक्ति प्रीत प्रभुसौं अति घनी ।।
तुरगादिक बहु वस्तु अनूप । पठई विनय वचन कहि भूप ।।७४।।

राजदूत चलि आयौ तहां । सभा थान जिन बैठे जहां ।।
हेमासन पर सोहैं एम । हिमगिरि-सिखर स्याम घन जेम ।।७५।।

देखि दूत रोमांचित भयौ । बहुबिध चरन कमलकौं नयौ ।।
मान्यौ सफलजन्म निज सार । त्रिभुवनपति परतच्छ निहार ।।७६।।

धरी भेंट जो राजा दई । विनय प्रनाम बीनती चई ।।
तब पूंछें तहां त्रिभुवनधनी । संपति नगर अजोध्यातनी ।।७७।।

कहै दूत कर जुग सिर धार । बरनैं तीर्थंकर अवतार ।।
मोख गये बरनैं तिहिंठाम । सुनि स्वामी चिंतैं उर ताम ।।७८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेली चाल ।

सुनि दूत वचन वैरागे । निज मन प्रभु सोचन लागे ।।
मैं इंद्रासन सुख कीनैं । लोकोत्तम भोग नवीनैं ।।७९।।

तब तृपति भई तहां नाहीं । क्या होय मनुषपद माहीं ।।
जो सागरके जलसेती । न बुझी तिसना तिस एती ।।८०।।

सो डाभ-अनीके पानी । पीवत अब कैसे जानी ।।
ईंधनसौं आगि न धापै । नदियौं नहिं समुद समापै ।।८१।।

यों भोगविषै अतिभारी । तृपते न कभी तनधारी ।।
जो अधिक उदय ये आवें । तौ अधिकी चाह बढ़ावें ।।८२।।

जो इनसौं तृपति विचारै । सौ वैसानर घृत डारै ।।
इन सेवत जो सुख पावै । सो आकौं आंब उम्हावै ।।८३।।

ये भीम भुजंग सरीखे । भ्रम-भाव-उदय सुभ दीखे ।।
चाखत हीके मुख मीटे । परिपाक समय कटु दीटे ।।८४।।

ज्यों खाय धतूरा कोई । देखै सब कंचन सोई ।।
धिक ये इंद्री-सुख ऐसे । विषबेल लगे फल जैसे ।।८५।।

इनही वस जीव अनादी । भव-भाँवर भ्रमत सवादी ।।
इन ही वस सीख न मानै । नानाबिध पातक ठानै ।।८६।।

थिर जंगम जीव संघारै । इनके वस झूठ उचारै ।।
पर चोरीसौं चित लावै । परतिय संग सील गमावै ।।८७।।

परिग्रह-तिसना विस्तारै । आरंभ उपाधि विचारै ।।
इत्यादि अनर्थ अलेखै । करि घोर नरकदुख देखे ।।८८।।

ये ही सुख पर्वतकेरे । जग फोरन वज्र बड़ेरे ।।
ये ही सब दोष भंडारे । धन-धर्म-चुरावनहारे ।।८९।।

मोही जन मोहैं योंहीं । ये आदर-जोग न क्योंहीं ।।
इनसौं ममता तज दीजै । पर त्यागत ढील न कीजै ।।९०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान पुरुष जग जैसे । हम खोये ये दिन ऐसे ।।
संजम-बिन काल गमायौ । कछु लेखेमैं नहिं लायौ ।।९१।।

ममतावस तप नहिं लीनौं । यह कारज जोग न कीनौं ।।
अब खाली ढील न कीजै । तारित-चिंतामनि लीजै ।।९२।।

दोहा ।

भोगविमुख जिनराज इमि, सुधि कीनी सिवथान ।।
भावैं बारह भावना, उदासीन हितदान ।।९३।।

चौपाई ।

द्रव्य सुभाव बिना जगमाहिं । पर ये रूप कछू थिर नाहिं ।।
तन धन आदिक दीखत जेह । काल-अगनि सब ईंधन तेह ।।९४।।

भव-वन-भ्रमत निरंतर जीव । याहि न कोई सरन सदीव ।।
ब्योहारै परमेठी-जाप । निहचै सरन आपकौं आप ।।९५।।

सूर कहावै जो सिर देय । खेत तजै सो अपजस लेय ।।
इस अनुसार जगतकी रीत । सब असार सब ही विपरीत ।।९६।।

तीनकाल इस त्रिभुवन माहिं । जीव-संगाती कोई नाहिं ।।
एकाकी सुख दुख सब सहैं । पाप पुन्य करनीफल लहैं ।।९७।।

जितने जग संजोगी भाव । ते सब जियसौं भिन्न सुभाव ।।
नितसंगी तन ही पर सोय । पुत्र सुजन पर क्यों नहिं होय ।।९८।।

असुचि अस्थि-पिंजर तन येह । चाम-वसन-बेढ़्यौ घिनगेह ।।
चेतनचिरा तहां नित रहै । सो बिन ग्यान गिलानि न गहै ।।९९।।

मिथ्या अविरत जोग कषाय । ये आस्रव कारन समुदाय ।।
आस्रव कर्म-बंधकौ हेत । बंध चतुरगतिके दुख देत ।।१००।।

समिति गुपति अनुपेहा धर्म । सहन परीषह संजम पर्म ।।
ये संवर कारन निरदोख । संवर करै जीवकौ मोख ।।१०१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप-बल पूर्व करम खिर जाहिं । नये ग्यानबल आवैं नाहिं ।।
यही निर्जरा सुखदातार । भवकारन-तारन निरधार ।।१०२।।

स्वयंसिद्ध त्रिभुवनथित जान । कटि कर धरैं पुरुष संठान ।।
भ्रमत अनादि आतमा जहां । समकित बिन सिव होय न तहां ।।१०३।।

दुर्लभ धर्म दसांग पवित्त । सुखदायक सहगामी नित्त ।।
दुर्गति परत यही कर गहै । देय सुरग सिवथानक यहै ।।१०४।।

सुलभ जीवकौं सब सुख सदा । नौग्रीवक ताईं संपदा ।।
बोधरतन दुर्लभ संसार । भव-दरिद्र-दुख मेटनहार ।।१०५।।

ये दस-दोय भावना भाय । दिढ़ वैरागि भये जिनराय ।।
देहभोग संसार सरूप । सब असार जान्यौ जगभूप ।।१०६।।

इतनैं लोकांतिक सुर आय । पुहपांजलि दे पूजे पाय ।।
ब्रह्मलोकवासी गुनधाम । देव रिषीश्वर जिनकौ नाम ।।१०७।।

सब पूरवपाठी बुधवंत । सहज सोममूरति उपसंत ।।
वनिताराग हियैं नहिं बहैं । एक जनम धरि सिवपद लहैं ।।१०८।।

तीर्थंकर जब विरकत होय । हर्षवंत तब आवैं सोय ।।
और कल्यानक करैं प्रनाम । सदा सुखी निवसैं निज धाम ।।१०९।।

हाथ जोरि बोले गुनकूप । थुतिवायक अरु सिच्छारूप ।।
धनि विवेक यह धन्य सयान । धनि यह औसर दयानिधान ।।११०।।

जान्यौ प्रभु संसार असार । अथिर अपावन देह निहार ।।
इंद्रिय-सुख सुपने सम दीस । सो याही बिध हैं जगईस ।।१११।।

उदासीन असि तुम कर धरी । आज मोह-सेना थरहरी ।।
बढ़्यौ आज सिवरमनि सुहाग । आज जगे भविजन सिरभाग ।।११२।।

जग प्रमाद निद्रावस होय । सोवत है सुधि नाहीं कोय ।।
प्रभु धुनिकिरन पयासै जबै । होय सचेत जगै जन तबै ।।११३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह भव दुस्तर पारावार । दुख-जल-पूरित वार न पार ।।
प्रभु-उपदेस-पोत चढ़ि धीर । अब सुखसौं जैहैं जग तीर ।।११४।।

सिवपुरि पौर भरम-पट जहां । मोह मुहर दिढ़ कीनी तहां ।।
तुम वानी कूची कर धार । अब भवि जीव लहैं पयसार ।।११५।।

स्वयंबुद्ध बोधन-समरत्थ । तुम पर प्रतिबुध वचन अकत्थ ।।
ज्यों सूरज आगे जिनराज । दीप दिखावन है बेकाज ।।११६।।

हम नियोग औसर यह भाय । तातैं करैं वीनती आय ।।
धरिये देव महाव्रत भार । करिये कर्म-सत्रु संघार ।।११७।।

हरिये भरम तिमिर सर्वथा । सूझै सुरग-मुकति-पथ जथा ।।
यों थुति करि बहुभाव दिढ़ाय । बारबार चरनन सिर नाय ।।११८।।

साधि नियोग गये निजथान । लोकांतिक सुर बड़े सयान ।।
अब चौबिध इंद्रादिक देव । चढ़ि निज निज बाहन बहुभेव ।।११९।।

हर्षितउर परिवार समेत । आये तृतिय कल्यानक हेत ।।
सुर वनिता नाचैं रस भरीं । गावैं मधुर गीत किन्नरीं ।।१२०।।

बाजे विबिध बजैं तिस बार । करैं अमरगन जय जय कार ।।
सोवन-कलस भरे सुरराय । विमल छीरसागर-जल लाय ।।१२१।।

हेमासन थापे जिनराय । उच्छव सहित न्हौन-बिधि ठाय ।।
भूषन वसन सकल पहिराय । चंदन-चर्चित कीनी काय ।।१२२।।

इस औसर प्रभु सोहैं एम । मोखबधूवर दूलह जेम ।।
कहि वैराग वचन जिन तबै । प्रतिबोधे परिजन जन सबै ।।१२३।।

अति हठसौं समझाई माय । लोचन भरे वदन विलखाय ।।
विमला नाम पालकी साज । आनी इंद्र चढ़े जिनराज ।।१२४।।

पहले भूमिगोचरी राय । सात पैंड़ लीनी सुखदाय ।।
फिर विद्याधर राजा भले । पैंड़ सात ही ते ले चले ।।१२५।।

पीछैं इंद्रादिक सुरसंघ । कांधै धरी चले पुर लंघ ।।
ना अति निकट न दीसै दूर । नभ मारग देखैं जन भूर ।।१२६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

जिस साहबकी पालकी, इंद्र उठावनहार ।।
तिस गुनमहिमा-कथन अब, पूरन होउ अपार ।।१२७।।

चौपाई ।

यों सुर नर हरषित भये । अस्व नाम वनमैं चलि गये ।।
बड़-तरु तलैं सिला सुभ जहां । कीनौं सची सांथिया तहां ।।१२८।।

उतरे प्रभु अति उत्तम ठाम । सांत भयौ कोलाहल ताम ।।
सत्रु-मित्र ऊपर समभाव । तिन-कंचन गिन एक सुभाव ।।१२९।।

सोमभाव स्वामी उर धार । पटभूषन सब दीनैं डार ।।
उदासीन उत्तरमुख भये । हाथ जोर सिद्धन प्रति नये ।।१३०।।

दुबिध परिग्रह तजि परमेस । पंच मुष्टि लोचे सिरकेस ।।
सिव-कामिनिकी दूती जोय । धरी दिगंबर-मुद्रा सोय ।।१३१।।

दोहा ।

सोहै भूषन वसन बिन, जातरूप जिनदेह ।।
इंद्र नीलमनिकौ किधौं, तेजपुंज सुभ येह ।।१३२।।

पोह प्रथम एकादसी, प्रथम पहर सुभ वार ।।
पद्मासन श्रीपार्सजिन, लियौ महाव्रतभार ।।१३३।।

और तीनसै छत्रपति, प्रभुसाहस अविलोय ।।
राज छारि संयम धस्यौ, दुख-दावानल-तोय ।।१३४।।

तब सुरेस जिनकेस सुचि, छीरसमुद पहुँचाय ।।
कर थुति साध नियोग सब, गयौ सुरग सुरराय ।।१३५।।

चौपाई ।

अब स्वामी बनथान मनोग । तेला थापि दियौ जिन जोग ।।
अट्ठाईस मूलगुन भाख । उत्तरगुन चौरासी लाख ।।१३६।।

सब प्रभु धरे परम समचेत । अचल अंग मुख मौनसमेत ।।
यों बन बसत उपन्यौ जान । संजम-बल मनपर्जयग्यान ।।१३७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा ।

लघु वयमैं जगपाल, कियौ निवीरज कामदल ।।
धीरज धनुष संभाल, तिनके पद-नीरज नमूं ।।१३८।।

इतिश्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवद्वैराग्यप्राप्तदीक्षाकल्याणकवर्णनं नाम सप्तमोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवाँ अधिकार

ज्ञान कल्याणक वर्णन ।

सोरठा ।

जा प्रभुकौ जसहंस, तीनलोक पिंजरैं बसै ।।
सो मम पाप विधंस, करौ पास परमेस नित ।।१।।

चौपाई ।

अब जिन उठे जोग-अवसान । देह हेत उद्यम उर आन ।।
परमउदास अधोगत दीठ । सहज संातमुद्रा मनईठ ।।२।।

दया-नीर-निर्मल-परबाह । गुलर-खेटपुर पहुंचे नाह ।।
लाभ अलाभ बराबर धार । निर्धन धनकौ नाहिं विचार ।।३।।

ब्रह्मदत्त भूपति बड़भाग । प्रभुकौं देखि बढ़्यौ उर राग ।।
उत्तम पात्र सकल गुनधाम । करि प्रनाम पड़िगाहे ताम ।।४।।

हेमासन थाप्यौ नरराय । प्रासुक जल परछाले पाय ।।
आठ भांति पूजा विस्तरी । हाथ जोर अंजुलि सिर धरी ।।५।।

मन-तन-वायक सुद्ध सरूप । नौ दाता गुन संजुत भूप ।।
सुद्ध अन्न दीनौं परवीन । प्रासुक मधुर दोष-दुख-हीन ।।६।।

उत्तम पात्र दानविधि करी । तीन भवन कीरति विस्तरी ।।
पंचाचरज भये नृपधाम । फिर स्वामी आये वन-ठाम ।।७।।

करैं घोर तप साधैं जोग । दरसन करत मिटैं सब सोग ।।
अचल अंग मुख सोहे मौन । एक चित्त निज पद चिंतौन ।।८।।

ज्यों समुद्र-जल विगत कलोल । अथवा सुरगिरि-सिखर अडोल ।।
तथा नील मनि-प्रतिमा येह । यों अकंप राजै जिनदेह * ।।९।।

---

* उक्तं च -
नोकिञ्चित्करकार्य्यमस्ति गमनप्राप्यं न किञ्चिद्दृशो-
र्दृश्यं यस्य न कर्णयोः किमपि हि श्रोतव्यमप्यस्ति न ।
तेनालम्बितपाणिरुज्झितगतिर्नासाग्रदृष्टी रहः ।
सम्प्राप्तोऽतिनिराकुलो विजयते ध्यानैकतानो जिनः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

वैर भाव छांड्यौ वन जीव । प्रीत परस्पर करैं अतीव ।।
केहरि आदि सतावैं नाहिं । निर्विष भये भुजग बनमाहिं ।।१०।।

सील सनाह सजौ सुचिरूप । उत्तरगुन-आभरन अनूप ।।
तपमय धनुष धर्‍यौ निजपान । तीन रतन ये तीखन बान ।।११।।

समताभाव चढ़े जगसीस । ध्यान कृपान लियौ कर ईस ।।
चारित-रंग-महीमैं धीर । कर्म-सत्रु-विजयी वरबीर ।।१२।।

दोहा ।

स्वामीकी सबपर दया, सबहीके रछपाल ।।
जगविजयी मोहादि रिपु, तिनके प्रभु छयकाल ।।१३।।

सोरठा ।

देखो पौन प्रचंड, दूब न खंडै दूबरी ।।
मौटे बिरछ बिहंड, बड़े बड़ो ही बल करैं ।।१४।।

दोहा ।

यों दुद्धर तप करतअति, धर्म ध्यान पदलीन ।।
चार मास छदमस्त जिन, रहे राग-मल-हीन ।।१५।।

चौपाई ।

एक दिवस दीच्छाबन जहां । जोगलीन प्रभु निवसैं तहां ।।
काउसग्ग तन विगतविरोध । ठाड़े जिनवर जोग निरोध ।।१६।।

संवर नाम जोतिषी देव । पूरव कथित कमठ-चर एव ।।
अटक्यौ अंबर जात विमान । प्रभु पर रह्यौ छत्रवत आन ।।१७।।

ततखिन अवधिग्यान बल तबै । पूरव बैर सँभालो सबै ।।
कोप्यौ अधिक न थांम्यौ जाय । राते लोयन प्रजुली काय ।।१८।।

आरंभ्यौ उपसर्ग महान । कायर देखि भजैं भयमान ।।
अंधकार छायौ चहुंओर । गरज गरज बरखैं घन घोर ।।१९।।

झरै नीर मुसलोपम धार । वक्र बीज झलकै भयकार ।।
बूड़े गिरि तरुवर बनजाल । झंझा वायु बही विकराल ।।२०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जल थल भयौ महोदधि एम । प्रभु निवसैं कनकाचल जेम ।।
दुष्ट विक्रियाबल अविवेक । और उपद्रव करे अनेक ।।२१।।

छप्पय ।

किलकिलंत बेताल, काल कज्जल छबि सज्जहिं ।।
भौं कराल विकराल, भाल मदगज जिमि गज्जहिं ।।
मुंडमाल गल धरहिं, लाल लोयननि डरहिं जन ।।
मुख फुलिंग फुंकरहिं, करहिं निर्दय धुनि हन हन ।।
इहि बिध अनेक दुर्भेष धरि, कमठजीव उपसर्ग किय ।।
तिहुँलोक बंद जिनचंद्रप्रति, धूलि डाल निज सीस लिय ।।२२।।

दोहा ।

इत्यादिक उतपात सब, वृथा भये अति घोर ।
जैसे मानिक दीपकौं, लगै न पौन झकोर ।।२३।।

प्रभु चित चल्यौ न तन हल्यौ, टल्यौ न धीरज ध्यान ।।
इन अपराधी क्रोधवस, करी वृथा निज हान ।।२४।।

पावक पकरै हाथसौं, अवसि हाथ जलि जाय ।।
परके तन लागै नहीं, वाके पुन्य सहाय ।।२५।।

प्रानी विषय-कषाय-वस, कौन कौन विपरीत ।।
करत हरत कल्यान निज, जलौ जलौ यह रीत ।।२६।।

प्रभु अचिंत्य-महिमा-धनी, त्रिभुवनपूजित-पाय ।।
तिनके यह क्यों संभवे, सुर उपसर्ग कराय ।।२७।।

इहि बिध जो कोई पुरुष, पूंछै संसय राखि ।।
ताके समुझावन निमित, लिखूं जिनागम साखि ।।२८।।

चौपाई ।

अवसर्पनि उतसर्पनि काल । होंहिं अनंतानंत विसाल ।।
भरत तथा ऐरावत माहिं । रँहटघटीवत आवैं जाहिं ।।२९।।

जब ये असंख्यात परमान, बीते जुगम खेत भू थान ।।
तब हुंडावसर्पनी एक । परै करै विपरीत अनेक ।।३०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताकी रीत सुनो मतिवंत । सुखमा-दुखम कालके अंत ।।
बरखादिककौ कारन पाय । विकलत्रय उपजैं बहु भाय ।।३१।।

कलपबिरछ विनसैं तिहि बार । बरतै कर्मभूमि-ब्योहार ।।
प्रथम जिनेस प्रथम चक्रेस । ताहि समय होहिं इहि देस ।।३२।।

विजयभंग चक्रीकी होय । थोड़े जीव जाहिं सिवलोय ।।
चक्रवर्ति विकलप विस्तरै । ब्रह्मवंसकी उतपति करै ।।३३।।

पुरुष सलाका चौथे काल । अट्ठावन उपजैं गुनमाल ।।
नवम आदि सोलह परजंत । सात तीर्थ मैं धर्म नसंत ।।३४।।

ग्यारह रुद्र जनम जहँ धरैं । नौ कलिप्रिय नारद अवतरैं ।।
सत्तम तेईसम गुनवर्ग । चरम जिनेश्वरकौ उपसर्ग ।।३५।।

तीजे चौथे काल मंझार । पंचममैं दीसैं बढ़वार ।।
विबिध कुदेव कलिंगी लोग । उत्तम धर्म नासके जोग ।।३६।।

सबर विलाल भील-चंडाल । नाहलादि कुलमैं विकराल ।।
कल्की उपकल्की कलिमाहिं । बयालीस ह्वैं मिथ्या नाहिं ।।३७।।

अनावृष्टि अतिवृष्टि विख्यात । भूमिवृद्धि वज्रागनिपात ।।
ईतभीत इत्यादिक दोष । कालप्रभाव होंहिं दुखपोष ।।३८।।

दोहा ।

यों त्रिलोक प्रज्ञप्तिमैं, कथन कियौ बुधराज ।।
सो भविजन अवधारियौ, संसय मेटन काज ।।३९।।

गीता ।

तीसरे कालहँ मुकति साधैं, प्रथम तीर्थंकर सही ।
पुनि तीन तीरथ होहिं चक्री, एक हरि जिनवर वही ।।४०।।

इस भांति चौथे जुग सलाका पुरुष ऊने अवतरैं ।
हुंडावसर्पिनिमैं अठावन जीव वासठ पद धरैं ।।४१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

तब फनेस आसन कंपियौ । जिन उपकार सकल सुधि कियौ ।।
तलखिन पदमावति ले साथ । आयौ जहँ निवसैं जिननाथ ।।४२।।

करि प्रनाम परदछना दई । हाथ जोरि पदमावति नई ।।
फनमंडप कीनौं प्रभुसीस । जलबाधा व्यापै नहिं ईस ।।४३।।

नागराज सुर देख्यौ जाम । भाज्यौ दुष्ट जोतिषी ताम ।।
हीनजोग सूधी यह बात । भागि जाय तबही कुसलात ।।४४।।

अब सब कोलाहल मिट गये । प्रभु सत्तम थानक थिर भये ।।
विकलपरहित चिदातमध्यान । करैं कर्मछय-हेत-महान ।।४५।।

सात प्रकृति चौथे गुनठान । पहले नास करीं भगवान ।।
अब ह्यां धर्म-ध्यान-बल धीर । तीन प्रकृति जीती बरबीर ।।४६।।

प्रथम सुकल पदसौं परनये । खिपकसेनि मारग पर ठये ।।
प्रकृति छतीस नवैं छय करी । दसवैं लोभप्रकृति प्रभु हरी ।।४७।।

दोहा ।

एकादसम उलंधिपद, चढ़े बारहैं थान ।।
कर्मप्रकृति सोलह तहां, नास करी अवसान ।।४८।।

चौपाई ।

इहिबिध त्रेसठ प्रकृति निबार । घाते कर्म घातिया चार ।।
चैतअंधेरी चौदस जान । उपज्यौ प्रभुके पंचम ग्यान ।।४९।।

लोकालोक चराचर भाव । बहुबिध परजयवंत सुभाव ।।
ते सब आन एक ही बार । झलके केवलमुकुर मंझार ।।५०।।

भये अनंत चतुष्टयवंत । प्रगटी महिमा अतुल अनंत ।।
दिव्य परम औदारिक देह । कोटि भानुदुति जीती जेह ।।५१।।

अलौकीक अद्भुत संपदा । मंडित भये जिनेसुर तदा ।।
वचन अगोचर महिमा सार । बरनन करत न पइये पार ।।५२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

पांच हजार प्रमान धनु, उपजत केवलग्यान ॥
अंतरिच्छ प्रभु तन भयौ, ज्यों ससि अंबरथान * ॥५३॥

चौपाई ।

प्रकटी केवलरवि किरन जाम । परिफूल्यौ त्रिभुवन कमल ताम ॥
आकास अमल दीसै अनूप । दिसि-विदिसि भई सब विमलरूप ॥५४॥

सुरलोक बजैं घंटागरिष्ट । तरु करन लगे तहां पुहपविष्ट ॥
इंद्रासन कांपे अतिगरीस । आनम्र भये मनिमुकुट सीस ॥५५॥

इत्यादिक बहुबिध चिहन चार । प्रभु केवलसूचक भये सार ॥
तब अवधि जोड़ि जान्यौ सुरेस । छय करे कर्म पारस जिनेस ॥५६॥

सिंहासन तजि निज सीस नाय । प्रनमो परोख सुख उर न माय ॥
इंद्रानी पूछै कहहु कंत । क्यों आसन तजि उतरे तुरंत ॥५७॥

किस कारन स्वामी नयौ सीस । याकौ प्रतिउत्तर देहु ईस ॥
तब बोले विकसित देवराज । प्रभु उपज्यौ केवलग्यान आज ॥५८॥

ऐरावतगज सजि सपरिवार । प्रथमेंद्र चल्यौ आनँद अपार ॥
बाजे बहु पटह पयान-भेर । सब बरनन करत लगै अबेर ॥५९॥

ईसानप्रमुख सब स्वर्गनाथ । निजबाहन चढ़ि चढ़ि चले साथ ॥
हरिनाद सुन्यौ जोतिषी देव । चंद्रादि चले तब पंच भेव ॥६०॥

भावन-घर बाजे संख भूरि । दसबिध सुर निकसे हरष पूरि ॥
वसु विंतर-घर गरजे निसान । यों परिजन सब कीनौं पयान ॥६१॥

यों चली चतुरबिध सुरसमाज । जिन-केवलपूजा करन काज ॥
अंबर तजि आये अवनि माहिं । जहँ समोसरन धुज फरहराहिं ॥६२॥

जो सुरपतिकौ उपदेस पाय । धनपतिने कीनौं प्रथम आय ॥
वर पंचवरन मनिमय अनूप । जगलछमीकौ कुलगृह सरूप ॥६३॥

---

* उक्तं च गाथा -

जादे केवलणाणे परमोदारं जिणाण सव्वाणं ।
गच्छदि उवरे चाबा पंचसहस्साणि वसुहाओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

समोसरनकी संपदा, लोकोत्तर तिहुं मौन ।।
वचनद्वार बरनै तिसै, सो बुध समरथ कौन ।।६४।।

सौरठा ।

पै थल अवसर पाय, धर्मध्यान कारन निरखि ।।
लिख्यौ लेस मन लाय, पढ़त सुनत आनँद बढ़ै ।।६५।।

चौपाई ।

पहले गोल पीठिका ठई । इंद्रनीलमनिमय निर्मई ।।
पांच कोस चौड़ी परवान । तीन लोक उपमा नहिं आन ।।६६।।

जाके चहुंदिस गिरदाकार । बनी पैंड़िका बीस हजार ।।
हाथ हाथपर ऊंची लसैं । नभपरजंत देखि दुख नसैं ।।६७।।

तापर धूलीसाल उतंग । पंच-रतन-रजमय सरवंग ।।
विबिध वरनसौं बलयाकार । झलकै इन्द्रधनुष उनहार ।।६८।।

कहीं स्याम कहिं कंचनरूप । कहिं विद्रुम कहिं हरितअनूप ।।
समोसरन लछमीकौ एम । दिपै जड़ाऊ कुंडल जेम ।।६९।।

चारौं दिसि तोरन बन रहे । कनक थंभ ऊपर लहलहे ।।
आगैं मानभूमि है जहां । मानथंभ चारों दिसि तहां ।।७०।।

तिनकी प्रथम पीठिका बनी । सोलह पैंड़ी संजुत ठनी ।।
चार चार दरवाजे ठान । तीन तीन तहां कोट महान ।।७१।।

तिनमैं और त्रिमेखल पीठ । तिनपै मानथंभ थिर दीठ ।।
अति उतंग कंचनके ठये । छत्रधुजादिकसौं छबि छये ।।७२।।

जिनैं देखि मानी मद-बढ़े । उतरे मान-महागिरि-चढ़े ।।
मूलभाग प्रतिमा मनहरैं । इंद्रादिक पूजा विसतरैं ।।७३।।

एक एक दिसि चहुं दिसि ठई । सहज वापिका वारिज-छई ।।
मंदादिक सुभ जिनके नाम । चारौं दिसि सोलह सुखधाम ।।७४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे खाई सोभित खरी । औंड़ी अधिक विमल जलभरी ।।
रतन-तीर राजैं चहुंओर । हंसकलाप करैं जहं सोर ।।७५।।

दोहा ।

बलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय ।
किधौं विमल गंगानदी, प्रभु परदछना देय ।।७६।।

चौपाई ।

आगे पुहपबेल-बन सार । महा सुगंध मधुप-सुखकार ।।
सघन छांह सब रितुके फूल । फूले जहां सकल सुखमूल ।।७७।।

याकै कछु अंतर दुति धरै । कंचन कोट प्रथम मनहरै ।।
बलयाकृति अति उन्नत जेह । मानौं मानुषोत्र गिरि येह ।।७८।।

चहुंदिसि सोहैं चार दुवार । रूपमई तिखने मनहार ।।
रतनकूट ऊपर जगमगै । लाल बरन अतिसुंदर लगै ।।७९।।

किधौं अरुन-छबि हाथ उठाय । जगलछमी नाचै बिहसाय ।।
नौनिधि जहां रहैं अभिराम । पिंगलादि हैं जिनके नाम ।।८०।।

प्रभुअजोग गिन दीनी छार । वे मचलीं सेवैं दरबार ।।
मंगल दरव एकसौ आठ । धरे प्रतेक मनोहर ठाठ ।।८१।।

गावैं जिनगुन देवकुमार । और विबिध सोभा तहं सार ।।
विंतरदेव खड़े दरवान । विनयहीनकौं दैहिं न जान ।।८२।।

यह पहले गढ़की बिधि कही । आगे और सुनौ अब सही ।।
गोपुर तजि चारौं दिसि गली । गमनहेत भीतरकौं चली ।।८३।।

तहां निरतसाला दुहुं पास । सब दिसिमैं जानौ सुखवास ।।
सुवरनथंभ फटिकमय भीत । तिखनी मनिमय सिखर पुनीत ।।८४।।

सुरवनिता नाचैं तह एम । लावन-तोय-तरंगनि जेम ।।
मंदहास मुख सोहैं खरीं । जिनमंगल गावैं सुखभरी ।।८५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाजैं बीन बांसली ताल । महा मुरजधुनि होय रसाल ।।
आगे बीथी अंतर धरे । दोनों दिसा धूपघट भरे ।।८६।।

सोरठा ।

स्याम वरन यह जानि, धूप धुआं नभकौं चल्यौ ।।
किधौं पुन्य-डर मानि, धुआं मिस पातग भज्यौ ।।८७।।

चौपाई ।

आगे चार बाग चहुं ओर । प्रथम असोक नाम चितचोर ।।
सप्तपरन चंपक सहकार । ये इनकी संग्या अविधार ।।८८।।

सब रितुके फल-फूलन-भरे । बिरछ बेलसौं सोहत खरे ।।
वापीमंडप महल मनोग । राजैं जहां जथाबिध जोग ।।८९।।

चैत-बिरछ चारौं बनमाहिं । मध्य भाग सुंदर छबि छाहिं ।।
जिनमुद्रा-मंडित मन हरैं । सुर नर नित पूजा विस्तरैं ।।९०।।

बाग ओट बेदी चहुंओर । चार द्वारमंडित छबि-जोर ।।
अब इस बन-बेदीतैं सही । गढ़परजंत गली जे रही ।।९१।।

तिनमैं धुजापांति फहराहिं । कंचनथंभ लगी लहराहिं ।।
दसप्रकार आकार समेत । तिनके भेद सुनौ सुखहेत ।।९२।।

माला वसन मोर अरविंद । हंस गरुड़ हरि वृषभ गयंद ।।
चक्रसहित दस चिहन मनोग । धुजा दुकूलनि सोहैं जोग ।।९३

ये दस एक जातकी जान । एक एकसौ आठ प्रमान ।।
दससै असी सबै मिल भई । एक दिसामैं सब बरनई ।।९४।।

चारौं दिसिकी जोड़ सरीस । चार हजार तीनसै बीस ।।
यह परमित जिनसासनमाहिं । अति विचित्र सोभा अधिकाहिं ।।९५।

हालैं धुजा पवन-वस येह । जिनपूजन भवि आये जेह ।।
पंथखेद तिनकौ मन आन । करत किधौं सतकार-विधान ।।९६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानथंभ धुजथंभ अनूप । चैतबिरछ बेदी गढ़रूप ।।
इत्यादिक ऊंचे इकसार । जिन-तनतैं बारह गुन धार ।।९७।।

आगे रजतमयी निरमान । तुंग कोट अति धवल महान ।।
किधौं सेत प्रभु-सुजस-प्रकास । फेरी देय फिर्यौ चहुंपास ।।९८।।

पूरबवत दरवाजे चार । रतनमई अनुपमछबि-धार ।।
नौनिधि मंगलदरब समाज । तोरनप्रमुख और सब साज ।।९९।।

प्रथम कोट बरनन-सम जान । ठाड़े भवन देव दरवान ।।
यासौं लगी और अब गली । चारौं तरफ एक सी चली ।।१००।।

कलपबिरछ-बन राजै तहां । दस बिध कलपतरोवर जहां ।।
भूषन वसन लगे जिन डार । सोभा कहत न लहिये पार ।।१०१।।

मध्यभाग जिनबिंब समेत । सिद्धारथ तरुवर छबि देत ।।
चहुंदिसि बेदी चहुं दिसि द्वार । रचना और अनेक प्रकार ।।१०२।।

इस बेदीके बाहर भाग । आगे फटिक कोट लौं लाग ।।
अति विचित्र महलनकी पांति ।। जिन सिर रतनकूट बहुभांति ।।१०३।।

चंद्रकांति मनि-भासुर भीत । सुवरनमय तहां थंभ पुनीत ।।
सुरनरनाग रमैं जिनमाहिं । किन्नरगन बहु केलि कराहिं ।।१०४।।

बीथी-मध्यदेस सुभरूप । पद्मराग-मनिमय नव तूप ।।
धुजा छत्र घंटा छबि देहिं । जिनमुद्रासौं मन हर लेहिं ।।१०५।।

आगैं तृतिय कोट बन एम । फटिकमई निर्मल नभ जेम ।।
अति उतंग सो बलयाकार । लालबरन मनिनिर्मित द्वार ।।१०६।।

और कथन पूरबवत जान । ठाड़े सुरगदेव दरवान ।।
महा मनोहर लोचनहारि । अनुपम सोभा अचरजकारि ।।१०७।।

अब सुनि मध्य भूमिकी कथा । फटिककोट भीतर विधि जथा ।।
गढ़सौं प्रथम पीठ लग लगी । फटिकभीत सोलह जगमगी ।।१०८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिनपै रतनथंभ छबि देहिं । प्रभाजालसौं तम हर लेहिं ।।
तिनहीपै श्रीमंडप छयौ । फटिकमई नभमैं निरमयौ ।।१०९।।

सोरठा ।

या श्रीमंडपमाहिं, निराबाध तिहुं जग बसैं ।।
भीर होय तहां नाहिं, त्रिभुवनपति अतिसय अतुल ।।११०।।

चौपाई ।

भीतन बीच गली जे रहीं । बारह सभा तहां जिन कहीं ।।
बैठे मुनि अपछर अज्जिया । जोतिष-वान-असुर-सुर-तिया ।।१११।।

भावन विंतर जोतिषि देव । कल्पनिवासी नर-पसु एव ।।
तिनमैं प्रथम पीठिका ठई । अनुपम बैडूरज-मनिमई ।।११२।।

मोर-कंठवत आभा जास । सोलह पैंड साल चहुं पास ।।
बारह सभा महा दिसि चार । तिनकौं यह पथ सोलह सार ।।११३।।

मंगलदरब जहां सब धरे । जच्छदेव सेवक तहां खरे ।।
धर्मचक्र तिनके सिर दिपै । जिनकौं देखि दिवाकर छिपै ।।११४।।

तापर दुतिय पीठिका बनी । चामीकरमय राजत घनी ।।
मेरुशृंगवत उन्नत एम । जगमगाय मंडल रवि जेम ।।११५।।

आठधुजा आठौं दिसि जहां । तिन सोभा बरनन बुधि कहां ।।
तिनमैं आठ चिहन चित्राम । चक्र गयंद वृषभ अभिराम ।।११६।।

वारिज वसन केहरीरूप । गरुड़ माल आकार अनूप ।।
मंद-पवन-वस हालैं जेह । किधौं पापरज झारत येह ।।११७।।

तापर तृतिय पीठिका और । तीन मेखला-मंडित ठौर ।।
सर्व रतनमय झलकत खरी । किरन जास दस दिसि विस्तरी ।।११८।।

गंधकुटी तहां बनी अनूप । पंचरतनमय जड़ित सरूप ।।
जाके चार द्वार चहुंओर । झलकैं मानिक होरा-होर ।।११९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीनपीठ सिर सोहत खरी । किधौं त्रिजग छबि नीची करी ।।
परम सुगंध न बरनी जाय । सुन्दर सिखर धुजा फहराय ।।१२०।।

तहां हेम-सिंहासन सार । तेजसरूप तिमिर छयकार ।।
नाना रतन प्रभामय लसैं । जगलछमी प्रति किरनन हसैं ।।१२१।।

वचनगम्य नहिं सोभा जहां । अंतरीच्छ प्रभु राजैं तहां ।।
त्रिभुवन पूजित पासजिनेस । ज्यों जगसिखर सिद्धपरमेस ।।१२२।।

दोहा ।

समवसरन रचना अतुल, ताकौ अति विस्तार ।।
संपति श्रीभगवानकी, कहत लहत को पार ।।१२३।।

सोरठा ।

जिन-बरनन-नभमाहिं, मुनि विहंग उद्यम करैं ।।
पै उड़ि पार न जाहिं, कौन कथा नर दीनकी ।।१२४।।

गीता ।

राजत उतंग असोक तरुवर, पवनप्रेरित थरहरै ।
प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानौं मनहरै ।।

तिस फूलगुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी ।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१२५।।

निज मरन देखि अनंग डरप्यौ, सरन ढूंढ़त जग फिर्यौ ।
कोऊ न राखै चोर प्रभुकौ, आय पुनि पायन गिर्यौ ।।
यों हार निज हथियार डारे, पहुप-बरसा मिस भनी ।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१२६।।

प्रभु अंग नील उतंग नगतैं, वानि सुचि सीता ढली ।
सो भेदि भ्रम गजदंत पर्वत, ग्यानसागरमैं रली ।।
नय सप्तभंग-तरंग-मंडित, पाप-ताप-विधंसनी ।।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१२७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंद्रार्चिचय छबि चारु चंचल, चमरवृंद सुहावने ।
ढोलैं निरंतर जच्छनायक, कहत क्यों उपमा बनै ।।
यह नीलगिरिके सिखर मानौ, मेघझर लागी घनी ।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१२८।।

हीरा जबाहर खचित बहुबिध, हेमआसन राजए ।
तहं जगत जन-मन-हरन प्रभुतन, नीलबरन विराजए ।।
यह जटित वारिज-मध्य मानौं, नीलमनि-कलिका बनी ।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१२९।।

जगजीत मोह महान जोधा, जगतमैं पटहा दियौ ।
सो सुकलध्यान कृपानबल, जिन बिकट बैरी बस कियौ ।।
ये बजत विजय निसान दुंदुभि, जीत सूचैं प्रभुतनी ।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१३०।।

छदमस्त पदमैं प्रथम दरसन, ग्यान चारित आदरे ।
अब तीन तेई छत्र छलसौं, करत छाया छबि-भरे ।।
अति धवलरूप अनूप उन्नत, सोमबिंब-प्रभा हनी ।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१३१।।

दुति देखि जाकी चंद सरमै, तेजसौं रवि लाजए ।
अब प्रभामंडल जोग जगमैं, कौन उपमा छाजए ।।
इत्यादि अतुल विभूतिमंडित, सोहिए त्रिभुवनधनी ।
सो जयौ पासजिनेंद्र, पातकहरन जग-चूड़ामनी ।।१३२।।

यों असम महिमासिंधु साहब, सक्र पार न पावही ।
तजि हासभय तुम दास भूधर भगतिवस जस गावही ।।

अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं ।
कर जोग यह बरदान मांगौं, मोखपद जावत लहौं ।।१३३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

इह बिध समोरसरन मंडान । कियौ कुबेर जथाबिध थान ॥
आये सुर बरसावत फूल । जयजयकार करत सुखमूल ॥१३४॥

अति प्रसन्नता सब बिध भई । हरसत तीन प्रदछिना दई ॥
धूल सालिमैं कियौ प्रवेस । चकित भयौ छबि देखि सुरेस ॥१३५॥

मुदित महर्धिक देवन साथ । जिन सनमुख आयौ सुरनाथ ॥
हस्त कमल जोरे अमरेस । देखे दृग भरि पासजिनेस ॥१३६॥

मनि उतंग आसन पर ईस । मानौं मेघ रतनगिरि-सीस ॥
फैल रही तन-किरन कलाप । कोट भानुसौं अधिक प्रताप ॥१३७॥

विकसत चित रोमांचित काय । प्रनम्यौ चरन सीस भुवि लाय ॥
मनिझारी भरि तीरथतोय । पूजे मघवा जिनपद दोय ॥१३८॥

सुरभ-सुगंधनि भक्ति बढ़ाय । अरचे इंद्र जिनेसुरपाय ॥
मुक्ताफलमय अच्छत लिये । पुंज परमगुरु आगे दिये ॥१३९॥

पारिजात मंदार मनोग । पुहप चढ़ाये जिनवर जोग ॥
सुधापिंड चरु लेय पवित्त । पूजा करी सक्र धरि चित्त ॥१४०॥

रतनप्रदीप रवाने खरे । श्रीपति पाँय सचीपति धरे ॥
देवलोककी अगर अनूप । पासचरन खेई सुरभूप ॥१४१॥

कलपतरोवरके फल रजे । जगपतिपाँय पुरंदर जजे ॥
सरब दरब धरि करि परनाम । दीन्यौ इंद्र अरघ अभिराम ॥१४२॥

दोहा ।

करि जिनपूजा आठ बिध, भावभगति बहुभाय ।
अब सुरेस परमेसथुति, करत सीस निज नाय ॥१४३॥

चौपाई ।

प्रभु इस जग समरथ नहिं कोय । जापै जस-बरनन तुम होय ॥
चार ग्यानधारी मुनि थके । हमसे मंद कहा कर सके ॥१४४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह उर जानत निहचै कीन । जिन-महिमा बरनन हम हीन ।।
पै तुम भगति करै बाचाल । तिसवस होय गहूं गुनमाल ।।१४५।।

जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी । जग-चंद्रोपम चूड़ामनी ।।
जय जय परम धरम दातार । करम कुलाचल चूरनहार ।।१४६।।

जय सिवकामिनि कंत महंत । अतुल अनंत चतुष्टयवंत ।।
जय जग आसभरन बड़भाग । सिवलछमीके सुभग सुहाग ।।१४७।।

जय जय धर्म धुजाधर धीर । सुरग मुकतिदाता वर वीर ।।
जय रतनत्रय रतनकरंड । जय जिन तारनतरन तरंड ।।१४८।।

जय जय समोसरन-सिंगार । जय संसय-वन-दहन तुसार ।।
जय जय निर्विकार निर्दोष । जय अनंत गुन मानिक कोष ।।१४९।।

जय जय ब्रह्मचरजदल साज । कामसुभट-विजयी भटराज ।।
जय जय मोह-महानग-करी । जय जय मदकुंजर-केहरी ।।१५०।।

क्रोधमहानल मेघ प्रचंड । मान-महीधर-दामिनि दंड ।।
मायाबेल धनंजय दाह । लोभ-सलिल-सोषक दिननाह ।।१५१।।

तुम गुनसागर अगम अपार । ग्यान जिहाज न पहुंचै पार ।।
तट ही तट पर डोलत सोय । स्वारथ सिद्ध तहांही होय ।।१५२।।

प्रभु तुम कीर्ति बेल बहु बढ़ी । जतन बिना जगमंडप चढ़ी ।।
और अदेव सुजस नित चहैं । ये अपने घरही जस लहैं ।।१५३।।

जगतजीव घूमैं बिनग्यान । कीनैं मोह महा विषपान ।।
तुमसेवा विषनासन जरी । यह मुनिजन मिलि निहचै करी ।।१५४।।

जन्मलता मिथ्यामत मूल । जामन-मरन लगैं जिहि फूल ।।
सो कबही बिन भगतिकुठार । कटै नहीं दुख-फल-दातार ।।१५५।।

कलपतरोवर चित्राबेल । काम पोरसा नौनिधि मेल ।।
चिंतामनि पारस पाषान । पुन्य पदारथ और महान ।।१५६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये सब एक जनम संजोग । किंचित सुखदातार नियोग ।।
त्रिभुवनाथ तुमारी सेव । जनम जनम सुखदायक देव ।।१५७।।

तुम जगबांधव तुम जगतात । असरन सरन-विरद-विख्यात ।।
तुम जगजीवनके रछपाल । तुम दाता तुम परम दयाल ।।१५८।।

तुम पुनीत तुम पुरुष पुरान । तुम समदरसी तुम सबजान ।।
तुम जिन जग्यपुरुष परमेस । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेस ।।१५९।।

तुमही जगभरता जगजान । स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ।।
तुम बिन तीनकाल तिहुंलोय । नहिं नहिं सरन जीवकौं कोय ।।१६०।।

तिस कारन करुनानिधि नाथ । प्रभु सनमुख जोरे हम हाथ ।।
जबलौं निकट होय निरवान । जगनिवास छूटै दुखदान ।।१६१।।

तब लौं तुम चरनांबुज-बास । हम उर होहु यही अरदास ।।
और न कुछ वांछा भगवान । यह दयाल दीजै वरदान ।।१६२।।

दोहा ।

इहिविध इंद्रादिक अमर, करि बहुभगति विधान ।।
निज कोटे बैटे सकल, प्रभु-सम्मुख सुखमान ।।१६३।।

जीति कर्मरिपु जे भये, केवललब्धि निवास ।।
ते श्रीपारसप्रभु सदा, करो विघन-घन नास ।।१६४।।

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवत्ज्ञानकल्याणकवर्णनं नाम

अष्टमोऽधिकारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौवाँ अधिकार

भगवान निर्वाण गमन वर्णन ।

सोरठा ।

पारस प्रभुकौ नाउँ, सार सुधारस जगतमैं ।।
मैं याकी बलि जाउँ, अजर-अमर-पदमूल यह ।।१।।

दोहा ।

बारह सभा सुथानमधि, यों प्रभु आनंदहेत ।।
जथा कमलिनीखंडकौं, ससिमंडल सुख देत ।।२।।

विकसितमुख सुर नर सकल, जिनसन्मुख करजोर ।।
निवसैं प्यासे अमृतधुनि, ज्यौं चातक घनओर ।।३।।

चौपाई ।

तब-गनराज स्वयंभू नाम । चार ग्यानधारी गुनधाम ।।
करि प्रनाम पारसप्रभु ओर, विनती करी करांजुलि जोर ।।४।।

भो स्वामी त्रिभुवनघर येह । मिथ्या-तिमिर छयौ अति जेह ।।
भूले जीव भमैं तामाहिं । हितअनहित कछु सूझै नाहिं ।।५।।

श्रीजिनवानी दीपक-लोय । ता बिन तहां उदोत न होय ।।
तातैं करुनानिधि स्वयमेव । करि उपदेस अनुग्रह देव ।।६।।

जानन जोग कहा है ईस । गहन जोग सो कह जगदीस ।।
त्यागन जोग कहो भगवान । तुम सबदरसी पुरुष प्रमान ।।७।।

कैसे जीव नरकमैं परै । क्यों पसुजोनि पाय दुख भरै ।।
काहेसौं उपजै सुरलोय । कौन कर्मतैं मानुष होय ।।८।।

कौन पापफल जनमै अंध । बहरा कौन क्रिया-सम्बन्ध ।।
किस अघ उदय होय नर पंग । गूंगा किस पातक-परसंग ।।९।।

कौन पुन्यतैं दरव अतीव । क्यों यह होय दरिद्री जीव ।।
पुरुष-वेद किस कर्म उदोत । नारि नपुंसक किस बिध होत ।।१०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किस आचरन बड़ी थिति धरै । क्यों करि अलप आयु धरि मरै ।।
भोगहीन अरु भोगसमेत । सुखी दुखी दीखै किस हेत ।।११।।

किस कारन मूरख मतिहीन । क्यों उपजै पंडित परवीन ।।
किस करनीतैं होय सरोग । किस अधर्मतैं पुत्रवियोग ।।१२।।

विकल सरीर पाय दुख सहै । नीच ऊंचकुल कैसैं लहै ।।
किन भावनि भवथिति विस्तरै । भवथिति भेद कहाकरि करै ।।१३।।

क्योंकर होय सुरगमैं इंद्र । कैसैं पद पावै अहमिंद्र ।।
चक्रीपद किस पुन्य-उदोत । किमि बांधै तीर्थंकर-गोत ।।१४।।

इत्यादिक यह प्रस्न समाज । इनकौ उत्तर कह जिनराज ।।
तुम सब संसयहरन जिनेस । जैसे भव-तम-दलन दिनेस ।।१५।।

दोहा ।

तब श्रीमुखवानी विमल, बिनअच्छर गंभीर ।।
महामेघकी गरज सम, खिरी हरन जगपीर ।।१६।।

तालु होठ सपरस बिना, मुखविकार बिन सोय ।।
सब भाषामय मधुरतर, श्रीजिनकी धुनि होय ।।१७।।

जथा मेघजल परिनमैं, निंबादिक-रस-रूप ।।
तथा सर्वभाषामई, श्रीजिनवचन अनूप ।।१८।।

चौपाई ।

छहौं दरब पंचासतिकाय । सात तत्त नौ पद समुदाय ।।
जानन जोग जगतमैं येह । जिनसौं जाहिं सकल संदेह ।।१९।।

सब बिध उत्तम मोखनिवास । आवागमन मिटै जिहिं वास ।।
तातैं जे सिवकारन भाव । तेई गहन जोग मन लाव ।।२०।।

यह जगवास महादुखरूप । तातैं भ्रमत दुखी चिद्रूप ।।
जिन भावन उपजै संसार । ते सब त्याग-जोग निरधार ।।२१।।

नरकादिक जग-दुख जांवंत । पाप कर्म-बसतैं बहुभंत ।।
सुरगादिक सुखसंपति जेह । पुन्य तरोवरकौ फल तेह ।।२२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

इहि बिध प्रस्न-समाजकौ, यह उत्तर सामान ।।
अब विसेस इनकौ लिखौं, जथासकति कछु जान ।।२३।।

जीव अजीव विसेस बिन, मूल दरव ये दोय ।।
इनहीकौ फैलाव सब, तीनकाल तिहुं लोय ।।२४।।

चेतन जीव अजीव जड़, यह सामान्य सरूप ।।
अनेकांत जिनमत विषै, कह्यौ जथारथरूप ।।२५।।

दरव अनेक नयातमक, एक एक नय साधि ।।
भयौ विबिध मतभेद यौं, जगमैं बढ़ी उपाधि ।।२६।।

जन्मअंध गजरूप ज्यों, नहिं जानै सरवंग ।।
त्यों जगमैं एकांत मत, गहै एक ही अंग ।।२७।।

ता विरोधके हरनकौं, स्यादवाद जिनवैन ।।
सब संसय-मेटन विमल, सत्यारथ सुखदैन ।।२८।।

सात भंगसौं साधिये, दरवजात जामाहिं ।।
सधै वस्तु निरविघन तब, सब दूषन मिट जाहिं ।।२९।।

घनाक्षरी ।

अपने चतुष्टैकी अपेच्छा दर्व 'अस्ति' रूप,
परकी अपेच्छा वही 'नासति' बखानियै ।।
एकही समै सो 'अस्ति नासति' सुभाव धरै,
ज्यों है त्यों न कहा जाय 'अवक्तव्य' मानियै ।।
अस्ति कहै नासति अभाव 'अस्ति अवक्तव्य',
त्योंही नास्ति कहैं 'नास्ति अवक्तव्य' जानिये ।।
एकै बार अस्ति नास्ति कह्यौ जाय कैसैं तातैं,
'अस्ति नास्ति अवक्तव्य' ऐसै परवानियै ।।३०।।

दोहा ।

इहि बिध ये एकांतसौं, सात भंग भ्रमखेत ।।
स्यादवाद पौरुष धरै, सब भ्रमनासन हेत ।।३१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्याद सब्दकौ अर्थ जिन, कह्यौ कथंचित जान ।।
नागरूप नय-विष-हरन, यह जग मंत्र महान ।।३२।।

ज्यों रससिद्ध कुधातु जग, कंचन होय अनूप ।।
स्यादवाद-संजोगतैं, सब नय सत्यसरूप ।।३३।।

चौपाई ।

दरवदिष्टि जिय नित्तसरूप । परजय न्याय अथिर चिद्रूप ।।
नित्यानित्य कथंचित होय । कह्यौ न जाय कथंचित सोय ।।३४।।

नित्य अवाचि कथंचित वही । अथिर अवाचि कथंचित सही ।।
नित्यानित्य अवाचक जान । कहत कथंचित सब परवान ।।३५।।

इहिबिध स्यादवाद नयछाहिं । साध्यौ जीव जैनमतमाहिं ।।
और भांति विकलप जे करैं । तिनके मत दूषन विसतरैं ।।३६।।

जीव नाम उपयोगी जान । करता भुगता देहप्रमान ।।
जगतरूप सिवरूप अरूप । ऊरधगमन सुभावसरूप ।।३७।।

सोरठा ।

ये सब नौ अधिकार, जीवसिद्धि कारन कहे ।।
इनकौ कछु विस्तार, लिखौं जिनागम देखिकै ।।३८।।

चौपाई ।

चार भेद ब्यौहारी प्रान । निहचै एक चेतना जान ।।
जो इनसौं नित जीवित रहै । सोई जीव जैनमत कहै ।।३९।।

सोरठा ।

प्रथम आव अवधार, इंद्री सांस उसांस बल ।।
मूल प्रान ये चार, इनके उत्तरभेद दस ।।४०।।

दोहा ।

पांच प्रान इंद्रीजनित, तीनभेद बलप्रान ।।
एक सांस उस्वास गनि आवसहित दस जान ।।४१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

सैनी जीव जगतमैं जेह । दसौं प्रानसौं जीवैं तेह ।।
मनसौं रहित असैनी जात । ते नौप्रान धरैं दिनरात ।।४२।।

कान बिना चौइंद्री जिते । आठ प्रानके धारक तिते ।।
तेइंद्रीके आँख न भनी । तातैं सात प्रानके धनी ।।४३।।

नासा बिन वेइंद्री जीव । तिन सबके षट प्रान सदीव ।।
जीभ-वचनवर्जित तन तास । एकेंद्री चउ प्राननिवास ।।४४।।

दोहा ।

इहिविध जीव अजीव सब, तीनकाल जगथान ।।
सत्तासुख अवबोध चित, मुकत-जीवके प्रान ।।४५।।

चौपाई ।

दोप्रकार उपयोग बखान । दरसन चार आठ बिथ ग्यान ।।
चच्छु अचच्छु अवधि अवधार । केवल ये सब दरसन चार ।।४६।।

अब सुन वसुबिध ग्यान-विधान । मति-स्रुत-अवधि ग्यान अज्ञान ।।
मनपर्जय केवल निरदोख । इनके भेद प्रतच्छ परोख ।।४७।।

मति श्रुति ग्यान आदिके दोय । ये परोख जानैं सब कोय ।।
अवधि और मनपरजय ग्यान । एकदेस परतच्छ प्रमान ।।४८।।

केवलग्यान सकल परतच्छ । लोकालोक-विलोकन दच्छ ।।
जहां अनंत दरब-परजाय । एक बार सब झलकैं आय ।।४९।।

दरसन चार आठ बिध ग्यान । ये व्यवहार चिहन जी जान ।।
निहचैरूप चिदातम येह । सुद्ध ग्यान दरसन गुनगेह ।।५०।।

कल्पित असदभूत व्यवहार । तिस नय घटपटादि कर्तार ।।
अनुपचरित अजथारथरूप । कर्मपिंडकरता चिद्रूप ।।५१।।

जब असुद्धनिहचै बल धरै । तब यह रागदोषकौं हरै ।।
यही सुद्धनिहचै कर जीव । सुद्ध भाव करतार सदीव ।।५२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा ।

प्रानी सुख दुख आप, भुगतै पुद्गल कर्मफल ।।
यह व्यवहारी छाप, निहचै निजसुख-भोगता ।।५३।।

दोहा ।

देहमात्र व्यवहार कर, कह्यौ ब्रह्म भगवान ।।
दरवित नयकी दिष्टिसौं, लोकप्रदेस समान ।।५४।।

अड़िल्ल ।

लघु गुरु देह प्रमान, जीव यह जानिये ।
सो विथार-संकोच-सकतिसौं मानिये ।।
ज्यों भाजन परवान, दीपदुति विस्तरै ।
समुदघात विन राम, यही उपमा धरै ।।५५।।

चौपाई ।

तैजस कारमानजुत भेस । बाहर निकसैं जीवप्रदेस ।।
छांड़ैं नहीं मूल तन ठाम । समुदघात विधि याकौ नाम ।।५६।।

सातभेद सब ताके कहे । गोमटसार देखि सरदहे ।।
प्रथम वेदना नाम बखान । दुतिय कषाय नाम उर आन ।।५७।।

तन-विकुर्वना तीजो येह । चौथो मारनांत सुनि लेह ।।
पंचम तैजस संग्या जान । छट्ठम आहारक अभिधान ।।५८।।

केवल समुदघात सातमा । ऐसी सकति धरै आतमा ।।
दुसह वेदनाके वस जहां । जीवप्रदेस कढ़त हैं तहां ।।५९।।

किसी जीवकै हो परवान । पहला समुदघात यह जान ।।
जब काहू रिपु करन विधंस । बाहर जाहिं जीवके अंस ।।६०।।

अति कषायसौं हो है तेह । दूजो समुदघात है येह ।।
नाना जात विक्रियाहेत । निकसैं ब्रह्म प्रदेस सचेत ।।६१।।

देव नारकीके यह होय । तीजो समुदघात है सोय ।।
किसी जीवकै मरते समै । हंस अंस तन बाहर गमै ।।६२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बांधी गतिके परसन काज । चौथो भेद कह्यौ जिनराज ।।
जो मुनिकै कछु कारन पाय । उपजै क्रोध न थांभ्यौ जाय ।।६३।।

तैजस तनकौ औसर यही । वाम कंधसौं प्रगटै सही ।।
ज्वालामई काहलाकार । अरु सिंदूरपुंज उनहार ।।६४।।

बारह जोजन दीरघ सोय । नौ जोजन विस्तीरन होय ।।
दंडकपुरवत प्रलय करेय । साधु-समेत भस्म कर देय ।।६५।।

असुभकषाय यही विख्यात । अब सुनि सुभ तैजसकी बात ।।
दुर्भिच्छादिक दुख अविलोय । दयाभाव मुनिवरकै होय ।।६६।।

सुभआकृतिसौं निकसै ताम । दच्छिन कांधेसौं अभिराम ।।
पूरवकथित देह-विस्तार । रोगसोग सब दोष निवार ।।६७।।

फिर निज थान करै पैसार । पंचम समुदघात यह धार ।।
करत साधु पदअर्थ-विचार । मन संसय उपजै तिहिं बार ।।६८।।

तहां तपोधन चिंता करै । कैसे यह विकलप निरवरै ।।
भरतखेत आदिक भूमाहिं । अब ह्यां निकट केवली नाहिं ।।६९।।

तातैं करिये कौन उपाय । बिन भगवान भरम नहिं जाय ।।
तब मुनि-मस्तकसौं गुनगेह । प्रगट होय आहारक देह ।।७०।।

एक हाथ तिस परमित कही । श्रीजिन सासनसौं सरदही ।।
फटिक वरन मनहरन अनूप । तहां जाय जहं केवलभूप ।।७१।।

दरसन करि संदेह मिटाय । फेरि आनि निजथान समाय ।।
अष्टम समुदघात यह मान । मुनिके होहि छठैं गुनथान ।।७२।।

जब सजोगि जिनकै परदेस । बाहर निकसैं अलख अभेस ।।
दंड-कपाटादिक-विधि ठान । क्रमसौं होंहिं लोक परवान ।।७३।।

सप्तम समुदघात यह भाय । सरधा करो भविक मन लाय ।।
मरनांतक आहारक जेह । एक दिसागत जानौ येह ।।७४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाकी पांच रहे जे आन । ते सब दसौं दिसागत जान ।।
दुबिध रास संसारी जीव । थावर जंगमरूप सदीव ।।७५।।

तहां पांच बिध थावरकाय । भू जल तेज वनस्पति बाय ।।
चार जातके जंगम जंत । चलत फिरत दीखैं बहुभंत ।।७६।।

संख सीप कौड़ी कृमि जोक । इत्यादिक वेइंद्री-थोक ।।
चैंटी दीम कुंथ पुनिआदि । ये तेइंद्री जीव अनादि ।।७७।।

माखी माछर भृंगीदेह । भ्रमर प्रमुख चौइंद्री येह ।।
देव नारकी नर विख्यात । केतक पसू पचेंद्री जात ।।७८।।

ये सब त्रस थावरके भेव । इनकौ विषयछेत्र सुन लेव ।।७९।।

छप्पय ।

फरस चारसै पांच, जीभ चौसठ सौ नासा ।
दृग जोजन उनतीस, सतक चौवन क्रम भासा ।।
दुगुन असैनी अंत, श्रवन वसु सहस धनुष सुनि ।
सैनी सपरस विषै, कह्यौ नौ जोजन श्रीमुनि ।।
नौ रसन घ्राण नो चच्छुप्रति, सैंतालीस हजार गिन ।
दोसै त्रेसठि बारह स्त्रवनविषै-छेत्रपरवान भन ।।८०।।

चौपाई ।

एकेंद्री सूच्छम अरु थूल । तीनभेद विकलत्रय मूल ।।
दोय प्रकार पचेंद्री कहे । मनसौं रहित सहित सरदहे ।।८१।।

दोहा ।

सातों ही परयाप्ततैं, अपरयाप्ततैं जान ।
चौदह जीवसमास यह, मूलभेद उर आन ।।८२।।

चौपाई ।

ऐसे ही चौदह गुनथान । चौदह मारगना उर आन ।।
जब लग है इन रूपी राम । तबलौं संसारी यह नाम ।।८३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अडिल्ल ।

यह अनादि संसार, जीवकी भूल है ।
इस कारजमैं और, हेतु नहिं मूल है ।।
तौ असुद्ध नयन्याय, जीव जगरूप है ।
दिव्य दृष्टिसौं देख, सबे सिवभूप है ।।८४।।

दोहा ।

भये कर्म-संजोगतैं, संसारी सब जीव ।
साधनबल जीतैं करम, तब यह सिद्ध सदीव ।।८५।।

अडिल्ल ।

अष्ट गुणातमरूप, कर्ममल मुक्त हैं ।
थिति उतपत्ति विनास, धर्मसंजुक्त हैं ।।
चरम देहतैं कछुक, हीन परदेस हैं ।
लोकअग्रपुर बसैं, परम परमेस हैं ।।८६।।

दोहा ।

अथिर अर्थपरयाय जो, हानिवृद्धमय रूप ।
तिसमैं सिद्ध बखानिये, उतपति-नाससरूप ।।८७।।

ग्येय त्रिबिध परनति धरै, ग्यान तदाकृत भास ।
यों भी सिवपदमैं सधै, थित उतपत्ति विनास ।।८८।।

अथवा सब परनति नसे, भई सिद्धपर्याय ।
सुद्धजीव निहचल सदा, यों तीनौं ठहराय ।।८९।।

अडिल्ल ।

बरन पांच रस पांच, गंध दो लीजिए ।
आठ फरस गुनजोर, बीस सब कीजिए ।।
जीव विषैं इनमाहिं, एक नहिं पाइए ।
यातैं मूरति हीन, चिदातम गाइए ।।९०।।

जगमैं जीव अनादि, बंध-संजोगतैं ।
छूट्यौ कबही नाहिं, कर्म-फल-भोगतैं ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असदभूत व्यवहार, पच्छ जो ठानिए ।
तो यह मूरतिवंत, कथंचित मानिए ।।९१।।

दोहा ।

प्रकृतिबंध थितिबंध पुनि, अरु अनुभाग प्रदेस ।।
चार भेद यह बंधके, कहे पास परमेस ।।९२।।

बंधविवर्जित आतमा, ऊरध-गमन करेय ।।
एक-समय-करि सरलगति, लोकअंत निवसेय ।।९३।।

ज्यों जलतूंबी लेपबिन, ऊपर आवै सोय ।।
त्यों ऊरधगति राम यह, कर्मबंध बिन होय ।।९४।।

जबलौं चऊबिध बंधसौं, बंधे जीव जगमाहिं ।।
सरल वक्र तबलौं चलैं, विदिसामैं नहिं जाहिं ।।९५।।

अमृतचंद्र मुनिराजकृत, किमपि अर्थ अवधार ।।
जीव-तत्त्व-वर्णन लिख्यौ, अब अजीव अधिकार ।।९६।।

पुद्गल धर्म अधर्म नभ, कालनाम अवधार ।।
ये अजीव जड़-तत्त्वके, भेद पंच परकार ।।९७।।

तिनमैं पुद्गल दोय बिध, बंधरूप अनुरूप ।।
यह सब हैं रूपी दरब, चारौं और अरूप ।।९८।।

अनुरूपी पुद्गल दरब, छेद भेद नहिं जास ।
अगनि जलादिक जोगसौं, होय न कबही नास ।।९९।।

जा अविभागीमैं नहीं, आदि मध्य अवसान ।।
सब्द रहित पर सब्दकौ, कारणभूत बखान ।।१००।।

सोरठा ।

भू जल पावक वाय, हेतुरूप सबकौ यही ।।
बहुबिध कारन पाय, वरनादिक पलटैं तुरत ।।१०१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविनासी जिसमाहिं, सदा पंच गुन पाइए ॥
इंद्रीगोचर नाहिं, अवधि ग्यानसौं जानिए ॥१०२॥

दोहा ।

वरन पांच रस पांचमैं, एक एक ही होय ॥
एक गंध दो गंधमैं, आठ फरसमैं दोय ॥१०३॥

ये परमानू पंचगुन, सात बंधमैं जान ॥
वरनादिक जे बीस हैं, ते गुन जात बखान ॥१०४॥

आगे पुद्गल बंधके, सुनो भेद खट सोय ॥
सरधा करतैं समझतैं, संसय रहै न कोय ॥१०५॥

चौपाई ।

प्रथम भेद अतिथूल बखान । दुतिय थूल संग्या उर आन ॥
तृतिय थूल सूच्छम सरदहो । सूच्छन थूल चतुर्थम गहो ॥१०६॥

पंचम सूच्छम नाम गिनेह । छट्ठम अति सूच्छम खट येह ॥
अब इनकौ बरनन बिरतंत । सुनौ एक मनसौं मतिवंत ॥१०७॥

खंडखंड कीनैं जे बन्ध । फेर न मिलैं आपसौं संध ॥
माटी ईंट काठ पाखान । इत्यादिक अतिथूल बखान ॥१०८॥

छिन्न भिन्न हो फिर मिल जाहिं । ऐसे पुद्गल जे जगमाहिं ॥
घृत अरु तेल जलादिक जान । ये सब थूल कहे भगवान ॥१०९॥

देखत लगैं दिष्टिसौ थूल । करमैं गहे जाहिं नहिं मूल ॥
धूप चांदनी आदि समस्त । जान थूल ते सूच्छम वस्त ॥११०॥

आंखनसौं दीखै नहिं जेह । चारौं इंद्रीगोचर तेह ॥
विबिध सपर्स सब्द रस गंध । सूच्छम थूल जान ते बंध ॥१११॥

नाना भांति वर्गना भिंड । कारमान परमानू पिंड ॥
काहू इंद्रीगोचर नाहिं । ते सूच्छम जिन-सासन माहिं ॥११२॥

कर्मवर्गना सो ही कहा । जो अति ही सूच्छम सरदहा ॥
दुनुक आदि परमानू बंध । सो सूच्छम-सूच्छम सुन बंध ॥११३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खट प्रकार पुद्गल इहि भाय । मुख्य गौन सबमैं गुन थाय ।।
इनहीसौं निर्मापत लोक । और न दीखै दूजौ थोक ।।११४।।

सब्द बंध छाया तम जान । सूच्छम थूल भेद संठान ।।
अरु उदोत आतप बहु भाय । यह दस-बिध पुद्गल-परजाय ।।११५।।

जब जड़ जीव चलै सतभाय । धर्म दरब तब करै सहाय ।।
जथा मीनकौ जल आधार । अपनी इच्छा करत विहार ।।११६।।

यों ही सहज करै थित सोय । तब अधर्म सहकारी होय ।।
ज्यों मगमैं पंथीकौं छाहिं । थितिकारन है बलसौं नाहिं ।।११७।।

जो सब द्रव्यनकौं अवकास । देय सदा सो द्रव्य अकास ।।
ताके भेद दोय जिन कहे । लोक अलोक नाम सरदहे ।।११८।।

जहं जीवादि पदारथवास । असंख्यात परदेस निवास ।।
लोकाकास कहावे सोय । परैं अलोक अनंता होय ।।११९।।

लोकप्रदेस असंखे जहां । एक एक कालानू तहां ।।
रतनरासि-वत निवसैं सदा । द्रव्यसरूप सुथिर सर्वदा ।।१२०।।

बरतावन लच्छन गुन जास । तीनकाल जाकौ नहिं नास ।।
समय घड़ी आदिक बहुभाय । ये व्यवहारकाल परजाय ।।१२१।।

पहले कह्यौ जीव अधिकार । और अजीव पंचपरकार ।।
ये ही छहौं द्रव्य-समुदाय । कालबिना पंचासतिकाय ।।१२२।।

दोहा ।

बहु परदेसी जो दरव, कायवंत सो जान ।
तातैं पचअथिकाय हैं, काय काल बिन मान ।।१२३।।

सवैया छंद ।

जीवरु धर्म अधर्म दरव ये, तीनौं कहे लोक-परवान ।।
असंख्यात परदेसी राजैं, नभ अनंत परदेसी जान ।।
संख असंख अनंत प्रदेसी, त्रिबिधरूप पुद्गल पहिचान ।।
एक प्रदेस धरै कालानू, तातैं काल कायबिन मान ।।१२४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोहा ।

काल काय बिन तुम कह्यौ, एकप्रदेसी जोय ।
पुद्गल परमानू तथा, सो सकाय क्यों होय ।।१२५।।

सवैया ।

अलख असंख्य दरव कालानू, भिन्नभिन्न जगमाहिं बसाहिं ।।
आपसमाहिं मिलैं नहिं कबहीं, तातैं कायवंत सो नाहिं ।।
रूप सचिक्कनतैं परमानू, ततखिन बंधरूप हो जाहिं ।।
यों पुद्गलकौं कायकलपना, कही जिनेसुरके मतमाहिं ।।१२६।।

जितने मान एक अविभागी, परमानू रोकै आकास ।।
ताकौ नाव प्रदेस कहावै, देय सर्व दरवनकौं बास ।।
तहां एक कालानू निवसै, धर्म अधर्म प्रदेस निवास ।।
रहैं अनंत प्रदेस जीवके, पुद्गलबंध लहैं अवकास ।।१२७।।

पोमावती ।

धर्म अधर्म कालअरु चेतन, चारों दरव अरूपी गाये ।।
तातैं एक अकास-देसमैं, प्रभु सबके परदेस समाये ।।
मूरतवंत अनंते पुद्गल, ते उस नभमैं क्योंकर माये ।।
यह संसय समझाय कहो गुरु, दास होय हम पूछन आये ।।१२८।।

सोरठा ।

बहु प्रदीप परकास, जथा एक मंदिर विषै ।।
लहै सहज अवकास, बाधा कछु उपजै नहीं ।।१२९।।

दोहा ।

त्यों हीं नभ परदेसमैं, पुद्गल बंध अनेक ।।
निराबाध निवसैं सही, ज्यों अनंत त्यों एक ।।१३०।।

जो कर्मनकौ आगमन, आस्त्रव कहिये सोय ।।
ताके भेद सिद्धांतमैं, भावित दरवित दोय ।।१३१।।

चौपाई ।

मिथ्या अविरत जोग कषाय । और प्रमाद दसा दुखदाय ।।
ये सब चेतनके परिनाम । भावास्त्रव इनहीकौ नाम ।।१३२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिनही भावनके अनुसार । ढिगवरती पुद्गल तिहि बार ।।
आवैं कर्म भावके जोग । सो दरवित आस्त्रव अमनोग ।।१३३।।

सोरठा ।

रागादिक परिनाम, जिनसौं चेतन बँधत है ।।
तिन भावनकौ नाम, भावबंध जिनवर कह्यो ।।१३४।।

दोहा ।

जो चेतन परदेसपै, बैठे कर्म पुरान ।।
नये कर्म तिनसौ बँधैं, दरवबंध सो जान ।।१३५।।

पद्धड़ी ।

आस्त्रव अविरोधनहेत भाव । सो जान भावसंवर सुभाव ।।
जो दर्वित आस्त्रव सुद्धरूप । सो होय दरव संवरसरूप ।।१३६।।

व्रत पंच समिति पांचौं सुकर्म । वर तीन गुप्ति दस भेद धर्म ।।
बारह बिध अनुप्रेच्छा विचार । बाईस परीषहविजय सार ।।
पुनि पांच जात चारित असेस । ये सर्व भावसंवर विसेस ।।
इनसौं कर्मास्त्रव रुकै एम । परनालीके मुख डाट जेम ।।१३८।।

दोहा ।

सुभ उपयोगी जीवके, व्रत आदिक आचार ।।
पापास्त्रव अविरोधकौं, कारन हैं निर्धार ।।१३९।।

सुध उपयोगी साध जे, तिनकै ये आचार ।।
पुन्यपाप दोऊनकौं, संवर हेत विचार ।।१४०।।

चौपाई ।

तपबल कर्म तथा थिति पात । जिन भावों रस दे खिर जात ।।
तेई भाव भावनिर्जरा । संवरपूरव है सिवकरा ।।१४१।।

बंधे कर्म छूटैं जिसबार । दरब-निर्जरा सो निर्धार ।।
इहिबिध जिनसासनमैं कह्यौ । समकितवंत सांच सरदह्यौ ।।१४२।।

जो अभेद रतनत्रय भाव । सोई भावमोख ठहराव ।।
जीव कर्मसौं न्यारा होय । दरवमोच्छ अविनासी सोय ।।१४३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये सब सात तत्त्व बरनये । पुन्यपाप मिलि नौपद भये ।।
आस्त्रव-तत्त्व विषै ये दोय । गर्भित जान लीजिये सोय ।।१४४।।

दोहा ।

जीव जथारथ दिष्टिसौं, सरधै तत्वसरूप ।।
सो सम्यक दरसन सही, महिमा जास अनूप ।।१४५।।

नयप्रमान निच्छेप करि, भेदाभेद विधान ।।
जो तत्वनकौ जाननो, सोई सम्यक ग्यान ।।१४६।।

सो सामान्य विलोकिये, दरसन कहिये जोय ।।
जो विसेस कर जानिये, ग्यान कहावै सोय ।।१४७।।

चारित किरियारूप है, सो पुनि दुबिध पवित्त ।।
एक सकल चारित्र है, दुतिय देसचारित्त ।।१४८।।

अड़िल्ल ।

जहां सकल सावद्य, सर्वथा परिहरै ।।
सो पूरन चारित्र, महा मुनिवर धरै ।।
लेश त्याग जहं होय, देशचारित वही ।।
सो गृहस्थकौ धर्म, गृही पालै सही ।।१४९।।

दोहा ।

तीर्थंकर निरग्रंथ पद, धर साधो सिवपंथ ।।
सोई प्रभु उपदेसियो, मोखपंथ निरग्रंथ ।।१५०।।

दसबिध बाहिज ग्रंथमैं, राखै तिल तुस मान ।।
तौ मुनिपद कहिये नहीं, मुनि बिन नहिं निर्वान ।।१५१।।

जे जन परिग्रहवंतकौं, मानैं मुक्ति निवास ।।
ते कबही न मुकत लहैं । भ्रमैं चतुरगति वास ।।१५२।।

क्रोधादिक जबही करै, बंधै कर्म तब आन ।।
परिग्रहके संयोगसौं, बंध निरंतर जान ।।१५३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंध अभावै मुक्ति है, यह जानै सब लोय ।।
बंध हेत बरतैं जहां, मुक्ति कहांतैं होय ।।१५४।।

पच्छिम भान न ऊगवै, अगनि न सीतल होय ।।
जथाजात जिनलिंगबिन, मोख न पावै कोय ।।१५५।।

छप्पय ।

धन्य धन्य ते साधु, देह-भव-भोग विरच्चे ।
धन्य धन्य ते साधु, आप अपने रस रच्चे ।।
धन्य धन्य ते साधु, पीठ जगकी दिसि कीनी ।
धन्य धन्य ते साधु, दिष्टि सिवसम्मुख दीनी ।।
तजि सकल आस बनवास वस, नगन देह मद परिहरे ।
ऐसे महंत मुनिराज प्रति, हाथ जोर हम सिर धरे ।।१५६।।

पंच महाव्रत दुद्धर धरैं । सम्यक पांच समिति आदरैं ।।
तीन गुपति पालैं यह कर्म । तेरहबिध चारित मुनिधर्म ।।१५७।।

यातैं सधै मुक्तिपद खेत । गिरही-धर्म सुरग सुख देत ।।
सो एकादस प्रतिमारूप । ते बरनों संच्छेप सरूप ।।१५८।।

पंच अदंबर तीन मकार । सात व्यसन इनकौ परिहार ।।
दरसन होय प्रतिग्या युक्त । सो दरसन-प्रतिमा जिन उक्त ।।१५९।।

ढाल ।

श्रीगुरु सिच्छा साभलौ, (ग्यानी) सात व्यसन परित्यागौरे ।।
ये जगमैं पातक बड़े, (ग्यानी) इन मारग मत लागौरे ।।१६०।।

जूवा खेल न मांड़िये, (ग्यानी) जो धन धर्म गवाँवैरे ।।
सब विसननकौ बीज है, (ग्यानी) देखंता दुख पावैरे ।।१६१।।

रजवीरजसैं नीपजै, (ग्यानी) सो तन मास कहावैरे ।।
जीव हते बिन होय ना, (ग्यानी) नांव लियां घिन आवैरे ।।१६२।।

सड़ि उपजै कीड़ां भरी, (ग्यानी) मद दुर्गंध निवासैरे ।।
छीयांसौं सुचिता मिटै, (ग्यानी) पीयां बुद्ध विनासैरे ।।१६३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धिक वेस्या बाजारनी, (ग्यानी) रमती नीचन साथैरे ।।
धनकारन तन पापिनी, (ग्यानी) बेचै विसनी हाथैरे ।।१६४।।

अति कायर सबसौं डरैं, (ग्यानी) दीन मिरग वनचारीरे ।।
तिनपै आयुध साधते, (ग्यानी) हा अतिकूर सिकारीरे ।।१६५।।

प्रगट जगतमैं देखिये, (ग्यानी) प्रानन धनतैं प्यारौरे ।।
जे पापी परधन हरैं, (ग्यानी) तिनसम कौन हत्यारौरे ।।१६६।।

परतिय व्यसन महा बुरो, (ग्यानी) यामैं दोष बड़ेरोरे ।।
इहि भव तन धन जस हरै, (ग्यानी) परभव नरक बसेरोरे ।।१६७।।

पांडव आदि दुखी भये, (ग्यानी) एक व्यसन रति मानीरे ।।
सातनसौं जे सठ रचे, (ग्यानी) तिनकी कौन कहानीरे ।।१६८।।

दोहा ।

पंच उदंबर फल कहे, मधु मद मास प्रकार ।।
इनके दूषन परिहरो, पहली प्रतिमा धार ।।१६९।।

चौपाई ।

पांच अनुव्रत गुनव्रत तीन । सिच्छाव्रत चारों मलहीन ।।
बारहव्रत धारैं निर्दोष । यह दूजी प्रतिमा व्रतपोष ।।१७०।।

दोहा ।

अब इन बारह व्रतनकौ, लिखों लेस विरतंत ।।
जिनकौ फल जिनमत कह्यौ, अचुत-स्वर्ग परजंत ।।१७१।।

ढाल ।

जो नित मन वच कायसौं, कृत आदिकसौं जेहों जी ।।
त्रसको त्रास न दीजिये, प्रथम अनुव्रत एहों जी ।।
बारहव्रत-बिध बरनऊँ ।।१७२।।

झूठ वचन नहिं बोलिये, सबही दोष निवासो जी ।।
दूजो व्रत सो जानिये, हितमित वचन संभासो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१७३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूलो विसरो भूपरो, जो परधन बहु भायो जी ।।
विन दीयैं लीजै नहीं, जनम जनम दुखदायो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१७४।।

ब्याही वनिता होय जो, तासौं कर संतोषो जी ।।
परिहरिये परकामिनी, यासम और न दोषो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१७५।।

धन-कन-कंचन आदि दे, परिग्रह संख्या ठानो जी ।।
तिसना नागिनि वस करो, यह व्रत मंत्र महानो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१७६।।

अवधि दसों दिसि खेतकी, कीजै संवर जानो जी ।।
बाहर पांव न दीजिये, जब लग घटमैं प्रानो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१७७।।

कर मरजादा कालकी, करिये देस-प्रमानो जी ।।
वन-पुर-सरिता आदि दे, नित्त गमनकौ थानो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१७८।।

जहां स्वारथ नहिं संपजै, उपजै पाप अपारो जी ।।
अनरथदंड वही कह्यौ, त्यागौ पंच प्रकारो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१७९।।

सामायिक-विधि आदरो, थल एकांत विचारो जी ।।
उर धरिये सुभ भावना, आरत रौद्र निवारो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१८०।।

पोषह व्रत आराधिये, चारौं परब-मंझारो जी ।।
चहुबिध भोजन परिहरो, घरआरंभ सब छारो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१८१।।

भोजन पान तंबोल तिय, खटभूषण बहु एमो जी ।।
भोगजथा उपभोग है, कब इनकौ जम नेमो जी ।।
बारहव्रत बिध बरनऊं ।।१८२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तम अतिथिनकौं सदा, दीजै चौबिध दानो जी ॥
भान बड़ाई त्यागकै, हिरदै सरधा आनो जी ॥
बारहव्रत बिध बरनऊं ॥१८३॥

अंत समय संलेखना, कीजै सकति संभालो जी ॥
जासौं व्रत संजम सबै, ये फल देहिं विसालो जी ॥
बारहव्रत बिध बरनऊं ॥१८४॥

चौपाई ।

तीनकाल सामायिक करै । पांचौं अतीचार परिहरै ॥
सत्रु मित्र जानै इक सार । सो नर तीजी प्रतिमाधार ॥१८५॥

परब चतुष्टय तजि आरंभ । पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ ॥
सोलह पहर धरै सुभ ध्यान । सोई चौथी प्रतिमावान ॥१८६॥

त्यागै हरीजात जावंत । दल फल कंद बीज बहु भंत ॥
प्रासुक जल पीवै तजि राग । सो सचित्तत्यागी बड़भाग ॥१८७॥

जो दिनमैं मैथुन परिहरै । मन वच काय सील दिढ़ धरै ॥
षष्टम प्रतिमाधारी धीर । यह जघन्य श्रावक वर बीर ॥१८८॥

जो सब नारि सर्वथा तजै । नौ बिध सदा सीलव्रत भजै ॥
काम कथारत कबहिं न होय । सप्तम प्रतिमाधारी सोय ॥१८९॥

जिन सब तजे बिनज ब्योहार । निरारंभ बरतैं मद छार ॥
अहनिसि हिंसासौं भयभीत । अष्टम प्रतिमावंत पुनीत ॥१९०॥

जो समस्त परिग्रह परित्याग । उचित वसन राखै विनराग ॥
सो नौमी प्रतिमा निरग्रंथ । यह मध्यम श्रावककौ पंथ ॥१९१॥

जो गृहस्थ-कारज अघमूल । तिनकौं अनुमति देय न भूल ॥
भोजन समय बुलायो जाय । सो दसमी प्रतिमा सुखदाय ॥१९२॥

दोहा ।

अब एकादसमी सुनो, उत्तम प्रतिमा सोय ॥
ताके भेद सिधांतमैं, छुल्लक ऐलक दोय ॥१९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

जो गुरुनिकट जाय व्रत गहै । घर तजि मठ-मंडपमैं रहै ।।
एकवसन तन पीछी साथ । कटि कोपीन कमंडल हाथ ।।१९४।।

भिच्छा-भाजन राखै पास । चारौं परब करै उपवास ।।
ले उदंडभोजन निर्दोष । लाभ अलाभ राग ना रोष ।।१९५।।

उचित काल उतरावै केस । डाढ़ी मूंछ न राखै लेस ।।
तप विधान आगम अभ्यास । सक्ति समान करै गुरुपास ।।१९६।।

यह छुल्लक श्रावककी रीत । दूजो ऐलक अधिक पुनीत ।।
जाके एक कमर कोपीन । हाथ कमंडल पीछी लीन ।।१९७।।

बिधिसौं बैठि लेहि आहार । पानिपात्र आगम अनुसार ।।
करै केसलुंचन अति धीर । सीत घाम सब सहै सरीर ।।१९८।।

सोरठा ।

पानिपात्र आहार, करै जलांजुलि जोड़ि मुनि ।।
खड़ो रहै तिहि बार, भक्ति रहित भोजन तजै ।।१९९।।

दोहा ।

एक हाथपै ग्रास धरि, एक हाथसौं लेय ।।
श्रावकके घर आयके, ऐलक असन करेय ।।२००।।

यह ग्यारह प्रतिमा कथन, लिख्यौ सिधांत निहार ।।
और प्रस्न बाकी रहे, अब तिनकौ अधिकार ।।२०१।।

चौपाई ।

जे जगमैं पापी परधान । सात व्यसन-सेवक अग्यान ।।
रुद्रध्यान धारैं अघमई । अति ही कूर कर्म निर्दई ।।२०२।।

झूठ वचन बोलैं सत छोर । परधन परवनिताके चोर ।।
बहु आरंभी बहुपरिग्रही । मिथ्यामतकौं पोषैं सही ।।२०३।।

चंड कषायी अधिक सराग । जिनप्रतिमा-निंदक निर्भाग ।।
मुनिवर निंदि पाप सिर लेहिं । जैनधर्मकौं दूषन देहिं ।।२०४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीच देव सेवा रसरचे । धरैं कृस्नलेस्या मद-मचे ।।
इत्यादिक करनी-रत रहैं । ऐसे नीच नरकगति लहैं ।।२०५।।

छप्पय ।

सप्तमसौं पसु होय, देस संयम न संभाले ।
छठे नरकसौं मनुष, होय व्रत नाहीं पालै ।।
पंचमसौं व्रत धरै, मोखगतिकौं नहिं साधै ।
चौथेसौं सिव जाय, नहीं तीरथपद लाधै ।।
सब सुभ्रवाससौं आयकै, वासुदेव नहिं भव धरै ।।
प्रति वासुदेव बलदेव पुनि, चक्रवर्ति नहिं अवतरै ।।२०६।।

चौपाई ।

मायाचारी जे दुठ जीव । परपंचनमैं निपुन अतीव ।।
झूठ लिखैं अरु चुगली खाहिं । झूठी साखि भरत भय नाहिं ।।२०७।।

सील न पालैं मोह उदोत । लेस्या जिनकै नील कपोत ।।
आरतध्यानी धर्मविहीन । पसुपर्याय लहैं अकुलीन ।।२०८।।

आरत रौद्र रहित नीराग । धर्म-सुकल-ध्यानी बड़भाग ।।
जिनसेवक पालैं व्रत सील । कसैं करन मदमाते कील ।।२०९।।

जिनप्रतिमा जिनमंदिर ठवैं । सातखेत उत्तम धन बवैं ।।
सदाचार सुन स्त्रावक होय । जथाजोग पावैं सुर लोय ।।२१०।।

सहज सरल-परनामी जीव । भद्रभाव उर धरैं सदीव ।।
मंद मोह जिनके देखिये । मंद कषाय प्रकृति पेखिये ।।२११।।

अलपारंभ अलप धन चहैं । उर कपोत लेस्या निर्बहैं ।।
पुन्य पाप नहिं बरतैं दोय । मिस्त्रभावसौं मानुष होय ।।२१२।।

परके दोष सुनैं मन लाय । विकथा-बानी बहुत सुहाय ।।
कुकवि काव्य सुन हरषैं जोय । ते बहरे उपजैं परलोय ।।२१३।।

पढ़ैं सुछंद विवेक न करैं । मृषापाठ विकथा विस्तरैं ।।
परनिंदा भावैं बहुभाय । निज परसंसा करैं बढ़ाय ।।२१४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलमूत्रादिक-भोजन-काल । मौन छांड़ि बोलैं बाचाल ॥
झूठ कहत कछु संकैं नाहिं । ते गूंगे जनमैं जगमाहिं ॥२१५॥

परतियमुख देखैं करि नेह । निरखैं सब योनादिक देह ॥
बधबंधन याचैं धरि राग । ते मरि आंधे होंहिं अभाग ॥२१६॥

जे नर करैं कुतीरथ-गौन । बहुत बोझ लादैं बिनमौन ॥
वृथाविहारी देख न चलैं । होय पंगु ते पातक फलैं ॥२१७॥

नीति-बनिज करि लछमी लेहिं । ओछा लेहिं न अधिका देहिं ॥
अलप वित्त दानादिक करैं । ते नर दरबधनी अवतरैं ॥२१८॥

जे धन पाय धरैं अभिमान । समरथ होकर देहिं न दान ॥
धनकारन छलछिद्र कराहिं । बढ़त परिग्रह धापैं नाहिं ॥२१९॥

लछमीवंत कृपन जन जेह । परभव होंहिं दरिद्री तेह ॥
मंद कषायी सरल सुभाव । अहनिसि बरतैं पूजाभाव ॥२२०॥

निज-वनिता-संतोषी सदा । मंदराग दीखैं सर्वदा ॥
दुराचार जिनके नहिं होय । पुरुषवेद पावैं सुरलोय ॥२२१॥

जे अतिकामी कुटिल अतीव । महा सरागी मोहित जीव ॥
पर वनितारत सोक-सँजुक्त । ते कामिनि-तन लहैं निरुक्त ॥२२२॥

रागअंध अति जे जगमाहिं । कामभोगसौं तृपते नाहिं ॥
वेस्या-दासी-रक्त कुसील । ते नर लहैं नपुंसकडील ॥२२३॥

मनवचकाय महानिर्दई । बध बंधन ठानैं अघमई ॥
परकौं पीड़ा बहुबिध करैं । ते जिय अलप आयु धरि मरैं ॥२२४॥

कृपावंत कोमल परिनाम । देखि विचारि करैं सब काम ॥
जीवदयामैं तत्पर सदा । परकौं पीड़ा देहिं न कदा ॥२२५॥

सबही जीवनसौं हितभाव । धरैं पुरुष ते दीरघ आव ॥
जे जिन-जग्य-परायन नित्त । पात्र-दानरत सील पवित्त ॥२२६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंद्रीजीत हिये संतोष । ते नर भोग लहैं व्रत-पोष ।।
पूजा दान विमुख मदलीन । इंद्री-लुब्ध दया-गुनहीन ।।२२७।।

दुराचार दुरध्यानी लोग । इनकौं प्रापत होंहिं न भोग ।।
समय विचारि पढ़ैं जिनग्रंथ । पढ़ैं पढ़ावैं जे सुभपंथ ।।२२८।।

हितसौं धर्मदेसना कहैं । ते परभव पंडितपद लहैं ।।
ग्यान-गरब हिरदैं धर लेहिं । जिन-सिधांतकौं दूषन देहिं ।।२२९।।

इच्छाचारी पढ़ै असुद्ध । ग्यान-विनय-वरजित जड़ बुद्ध ।।
पढ़ने जोग पढ़ावैं नाहिं । ऐसे मरि मूरख उपजाहिं ।।२३०।।

अनाचाररत आरंभवान । परकौं पीड़न करैं अयान ।।
पाप कर्म-रत धर्म न गहैं । ते परभवमैं रोगी रहैं ।।२३१।।

परदुख देखि हरख उर धरैं । परवनिता परधन जो हरैं ।।
नर-पसु जीव बिछोहैं जोय । सो पुत्रादि वियोगी होय ।।२३२।।

नीच कर्मरत करुना नाहिं । हाथ पांव छेदैं छिनमाहिं ।।
जे परको उपजावैं पीर । ते नर पावैं विकल सरीर ।।२३३।।

जो मिथ्यामत-मदिरा पियैं । पापसूत्रकी सरधा हियैं ।।
धर्म निमित्त जीव-बध करैं । महा कषाय-कलुषता धरैं ।।२३४।।

नास्तिक मती पाप-मग गहैं । ते अनंत संसारी रहैं ।।
रतनत्रय धारी मुनिराज । आगम ध्यानी धर्मजहाज ।।२३५।।

इच्छारहित घोर तप करैं । कर्म नास करि भवजल तिरैं ।।
उत्तम देव नमैं सिरनाय । पूजैं परम साधुके पाय ।।२३६।।

साधरमी-बत्सल मुनि-प्रीत । उत्तम गोत बंधैं इहि रीत ।।
जे जिन जती जिनागम जान । नमैं नहीं सठ करि अभिमान ।।२३७।।

मानैं नीच देव गुरु धर्म । ये सब नीच गोतके कर्म ।।
जिनके हियैं रमै वैराग । धारैं संजम तिसना त्याग ।।२३८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अति निर्मल चारित-भंडार । ग्यान-ध्यान-तत्पर अविकार ।।
ख्याति लाभ पूजा नहिं चहैं । ते अहमिंद-संपदा गहैं ।।२३९।।

पंच करन बैरी वस आन । चारित पालैं अति अमलान ।।
दुद्धर तप कर सोखैं काय । चक्री हौंय देवपद पाय ।।२४०।।

जे सम्यकदृष्टी गुनग्रही । सोलहकारन भावैं सही ।।
ते तीर्थंकर त्रिभुवनधनी । होहिं तीन-जग चूड़ामनी ।।२४१।।

दोहा ।

इहिबिध पूछनहारकौ, समाधान जिनराज ।।
कीनौ गनधरदेव प्रति, जगत-जीव-हितकाज ।। २४२।।

बानी सुन बारह सभा, भयो सबन आनंद ।।
जैसे सूरजके उदय, विकसै वारिजवृंद ।।२४३।।

वचन-किरनसौं मोहतम, मिट्यौ महा दुखदाय ।।
वैरागे जगजीव बहु, काललब्धि-बल पाय ।।२४४।।

चौपाई ।

केई मुक्तिजोग बड़भाग । भये दिगंबर परिग्रह त्याग ।।
किनही श्रावक-व्रत आदरे । पसु-पर्याय अनुव्रत धरे ।।२४५।।

केई नारि अर्जिका भईं । भर्ताके संग बनकौं गईं ।।
केई नर पसु देवी देव । सम्यकरत्न लह्यौ तहां एव ।।२४६।।

केई सक्तिहीन संसारि । व्रत भावना करी सुखकारि ।।
पूजा-दान-भाव परिनये । जथाजोग सब सेवक भये ।।२४७।।

दोहा ।

कमठ जीव सुर-जोतिषी, करि वचनामृत पान ।।
बम्यौ बैर मिथ्यात्व विष, नम्यौ चरन जुग आन ।।२४८।।

सम्यक दरसन आदर्यौ, मुक्ति-तरोवर-मूल ।।
संकादिक मल परिहरे, गई जनमकी सूल ।।२४९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहां सातसै तापसी, करत कष्ट अग्यान ॥
देखि जिनेसुर-संपदा, जग्यौ जथारथ ग्यान ॥२५०॥

दई तीन परदच्छिना, प्रनमैं पारसदेव ॥
स्वामि-चरन संयम धर्‍यौ, निंदी पूरव टेव ॥२५१॥

धन्य जिनेसुरके वचन, महामंत्र दुखहंत ॥
मिथ्यामत-विषधर-डसे, निर्विष होहिं तुरंत ॥२५२॥

कहां कमठसे पातकी, पायौ दरसन सार ॥
कहां पाप-तप-तापसी, धर्‍यौ महाव्रत-भार ॥२५३॥

जिनके वचन-जहाज चढ़ि, उतरे भवजल-पार ॥
जे प्रतच्छ आये सरन, क्यों न होय उद्धार ॥२५४॥

अब श्रीगनधरदेव तहं, चार ग्यान परवीन ॥
जिन-समुद्रतैं अर्थजल, मतिभाजन भर लीन ॥२५५॥

नाम स्वयंभू दयानिधि, विबिध रिद्धि-गुनखेत ॥
द्वादसांग रचना करी, जगत जीव हित-हेत ॥२५६॥

परमागम अम्रत-जलधि, अवगाहैं मुनिराय ॥
जन्म-जरा-मृतदाह हरि, होंय सुखी सिव पाय ॥२५७॥

चौपाई ।

प्रथम एकसौ बारह कोड़ । लाख तिरानवै ऊपर जोड़ ॥
बावन सहस पांच पद सही । द्वादसांगकी परमित कही ॥२५८॥

पद्धड़ी ।

इक्यावन कोड़ी आठ लाख । चौरासी सहस सिलोक भाख ॥
छस्सै साढ़े इक्कीस जान । यह एक महापदकौ प्रमान ॥२५९॥

दोहा ।

इहि बिध सभासमूह सब, निवसै आनंदरूप ॥
मानौं अम्रत नीरसौं, सिंचत देह अनूप ॥२६०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौपाई ।

तब सुरेस उठि विनती करी । हाथ जोर सिर अंजुलि धरी ।।
भो जगनायक जग आधार । तीन भवन-जन तारनहार ।।२६१।।

यह विहार-अवसर भगवान । करिये देव दया उर आन ।।
भविक-जीव-खेती कुम्हलाय । मिथ्या-तपसौं सूखी जाय ।।२६२।।

भो परमेस अनुग्रह करौ । बानी बरसासौं तप हरो ।।
मोख महापुरके परधान । तुम बिनजारे दयानिधान ।।२६३।।

प्रभुसहाय भवि सुखपद लेहिं । आवागमन जलांजुलि देहिं ।।
इहिबिध इंद्र प्रार्थना करी । सहसनाम करि थुति विस्तरी ।।२६४।।

भयो अनिच्छा-गमन जिनेस । भवि जीवनके भाव विसेस ।।
सकल सुरासुर जय जय कियौ । जिनविहार अम्रत-रस पियौ ।।२६५।।

गमन-समय औरे बिध भई । समोसरन-रचना खिर गई ।।
चले संग सुर चतुरनिकाय । चउबिध सकल चले सुरराय ।।२६६।।

सुरदुंदभि बाजैं सुखकार । जिनमंगल गावैं सुरनार ।।
हाथ धुजाजुत देवकुमार । चले जाहिं नभमैं छबि सार ।।२६७।।

चहुं दिसि चार चारसौ कोस । होय सुभिच्छ सदा निर्दोस ।।
नभ-विहार जिनवरकै होय । जीवघात तहां करै न कोय ।।२६८।।

सब उपसर्ग रहित भगवंत । निर-आहार आयु-परजंत ।।
चतुरानन देखै संसार । सब विद्यापति परम उदार ।।२६९।।

प्रभुके तनकी परै न छाहिं । पलक पलकसौं लागै नाहिं ।।
नख अरु केस बढ़ैं नहिं जास । ये दस केवल-अतिसय भास ।।२७०।।

भाषा सकल अर्थ मागधी । खिरै सकल संसय-हर सधी ।।
नर पसु जातिविरोधी जीव । सब उर मैत्री धरैं सदीव ।।२७१।।

नाना जाति बिरछ दुख दलैं । सब रितुके फल फूलनि फलैं ।।
प्रभु संचार-भूमि मनिमई । दर्पनवत आगम बरनई ।।२७२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरभि पवन पीछै अनुसरै । वायुकुमार-जनित सुख करै ॥
सुर नर पसू सभागत जेह । परमानंद सहित सब तेह ॥२७३॥

मारुतसुर जोजनमित मही । करैं धूलितृन-वर्जित सही ॥
मेघकुमार करैं मन लाय । गंधोदक बरसा सुखदाय ॥२७४॥

चरन-कमल जिन धारैं जहां । कंचन-कमल रचैं सुर तहां ॥
सात कमलतैं आगैं ठान । पीछैं सात एक मधि जान ॥२७५॥

यों पंकजकी पंद्रह पांति । सबा दोइ सै सब इहिभांति ॥
सुकलध्यान उपजे बहुभाय । निर्मल दिसि निर्मल नभ थाय ॥२७६॥

मुदित बुलावै देव-समाज । भविजनकौं जिन-पूजन काज ॥
धर्मचक्र आगे संचरे । सूरज-मंडलकी छबि हरै ॥२७७॥

मंगलदर्व आठ झलकाहिं । जथाजोग सुर लीये जाहिं ॥
ये चौदह देवनकृत जान । वर अतिसय-मंडित भगवान ॥२७८॥

करैं विहार परमसुख होत । भवि जीवनके भाग उदोत ॥
स्वर्ग मोख मारग प्रभु सार । प्रगट कियौ भ्रमतिमिर निवार ॥२७९॥

कहीं कुलिंगी दीखैं नाहिं । भानु उदय ज्यौं चोर पलाहिं ॥
सब निज निज वांछा अनुसार । पूरन आस भये तनधार ॥२८०॥

कासी कौसलपुर पंचाल । मरहठ मारूदेस विसाल ॥
मगध अवंती मालव ठाम । अंग बंग इत्यादिक नाम ॥२८१॥

कीनौ आरजखंड विहार । मेटौ जग-मिथ्या-अँधियार ॥
अब सब गनकी गनना सुनो । जथा पुरान-कथित बिध मुनो ॥२८२॥

प्रथम स्वयम्भू प्रमुख प्रधान । दस गनधर सर्वागम जान ॥
पूरवधारी परम उदास । सर्व तीन सै अरु पंचास ॥२८३॥

सिष्य मुनीसुर कहे पुरान । दसहजार नौ सै परवान ॥
अवधिवंत चौदह सै सार । केवलग्यानी एकहजार ॥२८४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विबिध विक्रियारिद्धि बलिष्ट । एकसहस जानो उतकृष्ट ।।
मनपरजय ग्यानी गुनवंत । सात सतक पंचास महंत ।।२८५।।

छसै वाद-विजयी मुनिराज । सब मुनि सोलह-सहस समाज ।।
सहस छबीस अर्जिका गनी । एक लाख स्त्रावक व्रतधनी ।।२८६।।

तीनलाख स्त्रावकनी जान । बरनी संख्या मूल पुरान ।।
देवीदेव असंख्य अपार । पसुगन संख्याते निरधार ।।२८७।।

इहबिध बारह सभा समेत । रतनत्रय-मारग-बिध देत ।।
विहरमान दरसावत बाट । सत्तर बरस भये कछु घाट ।।२८८।।

सम्मेदाचल सिखर जिनेस । आये श्रीपारस परमेस ।।
एक मास जिन जोग निरोध । मन वच काय क्रिया सब रोध ।।२८९।।

सूच्छम कायजोग थिति ठान । त्रितिय सुकल-संजुत तिहिं ठान ।।
तजि सयोगिथानक स्वयमेव । आये फिर अयोगिपद देव ।।२९०।।

पंच लघुच्छर है थिति जहां । चतुरथ सुकलध्यान-बल तहां ।।
दोय चरम समये जिन भनी । प्रकृति बहत्तर तेरह हनी ।।२९१।।

इहि बिध कर्म जीत भगवान । एक समय पहुंचे निर्वान ।।
औ छत्तीस मुनीसर साथ । लोकसिखर निवसे जिननाथ ।।२९२।।

सावन सुदि सातैं सुभ वार । विमल विसाखा नखत मँझार ।।
तजि संसार मोखमैं गये । परमसिद्ध परमातम भये ।।२९३।।

पूरव चरम देहतैं लेस । भये हीन आतम परदेस ।।
अष्टगुनातम-मय व्यवहार । निहचै गुन अनंत भंडार ।।२९४।।

सादि अनंत दसा परिनये । सिद्धभाव वसुगुनजुत थये ।।
परम सुखालय वासो लियौ । आवागमन जलांजलि दियौ ।।२९५।।

दोहा ।

पंच कल्यानक पाय सुख, जगत जीव उद्धार ।।
भये पूज्य परमातमा, जय जय पासकुमार ।।२९६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनके सुखकौं ग्यानकी, नहिं उपमा जगमाहिं ॥
जोतिरूप सुखपिंड थिर, इंद्रीगोचर नाहिं ॥२९७॥

अब तिनकौ आकार कछु, एकदेस अवधार ॥
लिखौं एक दृष्टांत करि, जिन-सासन अनुसार ॥२९८॥

चौपाई ।

मोममई इक पुतला ठान । नखसिख समचतुरस्र-संठान ॥
सब तन सुंदर पुरुषाकार । नराकार इसही बिध सार ॥२९९॥

माटीसौं इमि लेपहु सोय । जैसे त्वचा देहपर होय ॥
कहीं अंग खाली नहिं रहै । सब उपचार कल्पना यहै ॥३००॥

पुनि सो लीजै अगनि तपाय । सांचा रहै मोम गल जाय ॥
अब ता भीतर करो विचार । कहा रह्यौ बुध ताहि निहार ॥३०१॥

अंतर मूस पोल है जहां । पुरुषाकार रह्यौ नभ तहां ॥
याही अंबरके उनहार । ब्रह्मस्वरूप जान निरधार ॥३०२॥

यह आकास सून्य जडरूप । वह पूरन चेतन चिद्रूप ॥
यही फेर है या वामाहिं । आकृतिमैं कछु अंतर नाहिं ॥३०३॥

या बिध परब्रह्मकौ रूप । निराकार साकार-सरूप ॥
यह दृष्टांत हियैं निज धरो । भवि जिय अनुभवगोचर करो ॥३०४॥

दोहा ।

बसैं सिद्ध सिवखेतमैं, ज्यों दर्पनमैं छाहिं ॥
ग्यान-नैनसौं प्रगट हैं, चर्म-नैनसौं नाहिं ॥३०५॥

चौपाई ।

तब इंद्रादिक सुर समुदाय । मोख गये जाने जिनराय ॥
श्रीनिर्वानकल्यानक काज । आये निज निज बाहन साज ॥३०६॥

परम पवित्त जानि जिन-देह । मनि-सिविकापर थापी तेह ॥
करी महापूजा तिहिं बार । लिये अगर चंदन घनसार ॥३०७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और सुगंध दरब सुचि लाय । नमें सुरासुर सीस नमाय ।।
अगनिकुमार इंद्रतें ताम । मुकटानल प्रगटी अभिराम ।।३०८।।

ततखिन भस्म भई जिनकाय । परम सुगंध दसौं दिसि थाय ।।
सो तन भस्म सुरासुर लई । कंठ हिये कर मस्तक ठई ।।३०९।।

भक्ति भरे सुर चतुरनिकाय । इहबिध महा पुन्य उपजाय ।।
कर आनंद निरत बहुभेव । निज निज थान गये सब देव ।।३१०।।

दोहा ।

पंच-कल्यानक-पूज्य प्रभु, सिवसिरिकंत जिनेस ।।
सब जग सुख संपति करो, श्रीपारस परमेस ।।३११।।

पद्धड़ी ।

पहले भव वामन कुल पवित्त । मरुभूत उपन्नो सरलचित्त ।।
दूजे बनहस्ती वज्रघोष । जिन पाले बारहव्रत अदोष ।।३१२।।

तीजे भव द्वादस स्वर्गवास । सहस्रार नाम सब सुख-निवास ।।
चौथे भव विद्याधरकुमार । लघु वैस लियौ चारित्रभार ।।३१३।।

पंचम भव अच्युत सुरगथान । बाईस जलधि जहं थिति प्रमान ।।
छट्ठे भवमैं चक्री नरेस । जिन साधे सहस बतीस देस ।।३१४।।

सातवैं जनम अहमिंद्र होय । सुख कीनैं चिर उपमा न कोय ।।
आठम भव श्रीआनंदराय । तजि राजरिद्धि बन बसे जाय ।।३१५।।

सोलहकारन भाये मुनिंद्र । पुनि भये बारमैं स्वर्ग इंद्र ।।
इहि बिध उत्तम नौ जनम पाय । वामा जननी उर बसे आय ।।३१६।।

जे गरभ जनम तप ग्यान काल । निर्वान-पूज्य कीरति विसाल ।।
सुर नर मुनि जाकी करैं सेव । सो जयौ पार्स देवाधिदेव ।।३१७।।

दोहा ।

नाम लेत पातक भजैं, सुमरत संकट जाहिं ।।
तेईसम अवतार मुझ, बसो सदा हियमाहिं ।।३१८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छप्पय ।

कमठ जीव तन छोरि, दुतिय कुरकट अहि जायौ ।।
नरक पंचमैं जाय, आय अजगर तन पायौ ।।
धूम प्रभामैं उपजि, भील अति भयौ भयानक ।
चरम नरक पुनि सिंघ, फेर पंचम भू-थानक ।।
पसु जोनि भुंजि महिपाल नृप, देव जोतिषी अवतर्यौ ।।
इहि बिध अनेक भवदुख भरे, बैरभाव-विषतरु फल्यौ ।।३१९।।

दोहा ।

छिमाभाव-फल पासजिन, कमठ बैर फल जान ।।
दोनौं दिसा विलोककै, जो हित सो उर आन ।।३२०।।

सोरठा

जीव जाति जावंत, सबसौं मैत्रीभाव करि ।।
याकौ यह सिद्धंत, बैरविरोध न कीजिये[1] ।।३२१।।

सवैया ।

जो भगवान बखान करी धुनि, सो गुरु गौतमने उर आनी ।
तापर आइ टई रचना कछु, द्वादस अंग सुधारस बानी ।।
ता अनुसार अचारज संघ, सुधी बलसौं बहु काव्य बखानी ।
यों जिनग्रंथ जथारथ हैं, अजथारथ हैं सब और कहानी ।।३२२।।

दोहा ।

जितने जैनसिद्धांत जग, ते सब सत्यसरूप ।।
धर्मभावना हेत सब, हितमित सिच्छारूप ।।३२३।।

कलपित कथा सुहावनी, सुनते कौन अरत्थ ।।
लाख दाम किस कामके, लेखन लिखे अकत्थ ।।३२४।।

---

१ उक्तं च-
सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं ।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ।।३२३।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा ।

सुन श्रीपार्सपुरान, जान सुभासुभ कर्मफल ।
सुहित हेत उर आन, जगत जीव उद्यम करो ॥३२५॥

दोहा ।

प्रभुचरित्र मिस किमपि यह, कीनौ प्रभु-गुनगान ॥
श्रीपारस परमेसकौ, पूरन भयौ पुरान ॥३२६॥

पूरव चरित विलोकिकै, भूधर बुद्धिप्रमान ॥
भाषाबंध प्रबंध यह, कियौ आगरे थान ॥३२७॥

छप्पय ।

अमरकोष नहिं पढ़्यौ, मैं न कहिं पिंगल पेख्यौ ।
काव्य कंठ नहिं करी, सारसुत सो नहिं सीख्यौ ॥
अच्छर-संधि-समास-ग्यानवर्जित बुधि हीनी ।
धर्मभावना हेत, किमपि भाषा यह कीनी ॥
जो अर्थ छंद अनमिल कहीं, सो बुध फेर सवांरियौ ।
सामान्य बुद्धि कविकी निरखि, छिमाभाव उर धारियौ ॥३२८॥

दोहा

जिनसासन अनुसार सब, कथन कियौ अवसान ॥
निज कपोलकल्पित कहीं, मति समझो मतिवान ॥३२९॥

छय-उपसमकी ओछसौं, कै प्रमादवस कोय ॥
इहिविध भूल्यौ पाठ मैं, फेर सवांरो सोय ॥३३०॥

पंच बरस कछु सरससे, लागे करतन बेर ॥
बुधि थोरी थिरता अलप, तातैं लगी अबेर ॥३३१॥

सुलभ काज गरुवो गनै, अलप बुद्धिकी रीत ॥
यौं कीड़ी कन ले चलै, किधौं चली गढ़ जीत ॥३३२॥

विघनहरन निरभयकरन, अरुन वरन अभिराम ॥
पास-चरन संकट-हरन, नमों नमों गुनधाम ॥३३३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छप्पय।

नमों देव अरहंत, सकल तत्त्वारथभासी ॥
नमों सिद्ध भगवान, ग्यानमूरति अविनासी ॥
नमों साध निरग्रंथ, दुबिध परिग्रह-परित्यागी ॥
जथाजात जिनलिंग धारि, बन बसे विरागी ॥
बंदौं जिनेसभाषित धरम, देय सर्व सुख-सम्पदा ॥
ये सार चार तिहुँलोकमैं, करो छेम मंगल सदा ॥३३४॥

संवत सतरह शतकमैं, और नवासी लीय।
सुदि अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रंथ समापत कीय ॥३३५॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवन्निर्वाणगमनवर्णनं नाम नवमोऽधिकारः।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वपुराण-ग्रन्थका सार

मंगलाचरण-पार्श्वस्तुति

मोह अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान, तप लक्ष्मी के पति भगवान पार्श्वनाथ मुझे सुमति प्रदान करें। हे वामा के नन्दन ! आपने संसार के कल्याण के लिए जन्म लिया है। मुनिजन आप का ध्यान कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। हे तीनों लोकों के तिलक, सज्जन पुरुषों के हृदय कमल को विकसित करने वाले जगत के बांधव, अनंत अनुपम गुणों के भंडार ! आपने रागरूपी सर्प के दातों को उखाड़ कर फेंक दिया और अरहंत पद प्राप्त कर संसार के समस्त प्राणियों के शरणभूत हो गये हो। हे स्वामी ! मेरे मन में आकर, निवास करो मेरे मंगल करो।

आप निर्मल ज्ञान के दातार हो, केवलज्ञान के धनी ! आपका मुखचन्द्र रात्रि के चंद्रमा को लजाता है। आपके नाम के मंत्र की जाप पापरूपी सर्पों को भगाने में गरूड़ के समान काम करती है। आप सदा जयवंत रहें आपका प्रवचन संसाररूपी इस महल में रत्नों के दीपक समान प्रकाश करता है। हे सरस्वती देवी ! मेरे हृदयकमल में निवास कर मेरे सम्पूर्ण दारिद्र का नाश करो।

मैं वृषभसेन आदि आचार्यों गुरूगौतम गणधर को नमस्कार करता हूँ जो संसार सागर से पार होने के लिए जहाज के समान हैं। और मैं कुन्दकुन्द आचार्यों को भी नमस्कार करता हूँ। जो जैन तत्त्वों के जाननहार है। इस प्रकार सम्पूर्ण पूज्यों को पूज्य कर मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार भाषा पार्श्वपुराण की रचना करता हूँ जो स्वपर कल्याण करने वाली है।

जिनेन्द्र भगवान के गुण तो अगम हैं जिनसेनाचार्य ने भी जिनका वर्णन कर अंत नहीं पा पाया है तब मैं अल्प बुद्धिवाला कौन सी गिनती में हूँ। जैसे जो भार हाथी भी नहीं ढो सकता उसे खरगोस पर रखा जाय तो कैसे ढो सकेगा। यह कार्य तो ऐसा हुआ जैसे आकाश को हाथ से नापना, सागर के जल को चुल्लू में भरना। फिर भी मैं भगवान के गुणों का वर्णन करने को उद्यत हुआ हूँ। मुझ में शक्ति तो नहीं किन्तु भक्ति के बल मैं पार्श्वपुराण की रचना कर रहा हूँ। वह भी पूर्व आचार्यों के कहने के अनुसार।

मगध देश में राजगृह नाम का बड़ा सुन्दर नगर है। उस में राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनके चेलना नाम की विदुषी पटरानी थी। राजा क्षायिक सम्यग्दृष्टि नीतिमान पुण्यपुरुष थे। एक दिन राजा राज्य सभा में बैठा था कि रोमांचित नामक वनमाली ने छहों ऋतुओं के फलफूल एक साथ लाकर राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को समर्पित किए और प्रणाम करके बोलाः हे नृपवर ! विपुलाचल पर्वत पर भगवान वर्धमान स्वामी का समोशरण आया है जिस की शोभा का वर्णन मैं मुख से नहीं कह सकता । इस प्रकार माली के वचन सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और अपने सभी वस्त्राभूषण उतारकर माली को दे दिए । आसन से उठ कर जिस दिशा में भगवान का समोशरण विराजमान था सात पैर चलकर परोक्ष नमस्कार किया । नगर में आनंद भेरी बजवाई । प्रातः सभी नगर - निवासियों के साथ समोशरण में पहुँच कर तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार किया । पश्चात् श्री गौतम गणधर को नमस्कार कर मनुष्य के कोठे में बैठ गया । राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से पूछा कि मैं भगवान पार्श्वनाथ का जीवनचरित्र सुनना चाहता हूँ, जिसके सुनने से भव्य जीवों के पाप क्षय होते हैं । ऐसा सुनकर गौतम गणधर ने कहा कि हे नृप श्रेणिक ! तुमनें बड़ा सुन्दर प्रश्न किया है । मैं पार्श्वप्रभु का चरित्र कहता हूँ । जिसमें मनुष्यभव सफल होता है सो तुम सुनो ।

जिस प्रकार मगधनरेश के प्रति पार्श्वचरित्र गौतम गणधर ने कहा उसी के अनुसार मैं भी कहता हूँ । **जैन कथा कल्पित नहीं होती है** ऐसा निश्चय समझो, जैन वचन तो समुद्र के समान अगाध होते हैं । उसमें अर्थ पानी के समान होता है, जिसकी जितनी बुद्धि होती है अपनी बुद्धि के अनुसार ग्रहण कर लेते हैं ।

प्रथम अधिकार

जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र है । उसके आर्य खंड में एक सुरम्य देश है । उसके मध्य पोदनपुर नामका बड़ा सुन्दर नगर था । जो स्वर्ग पुरी के समान सुन्दर धन धान्य संपदाओं से युक्त था । वहां का राजा अरविन्द बहुत धर्मात्मा था । उसके विश्वभूति नामका ब्राह्मण मंत्री था । मंत्री की अनुन्धरी नाम की सुयोग्य पत्नी थी । इन दोनों के कमठ और मरुभूति दो पुत्र थे । जो विष और अमृत के समान थे । बड़ा कमठ स्वभाव से क्रूर अधर्मी और छोटा मरुभूति बड़ा धार्मिक सज्जन एवं कुशाग्र बुद्धि वाला था । पिता ने दोनों को बराबर शिक्षा दी, लेकिन कमठ में कोई अच्छे संस्कार नहीं आ पाये व मरुभूति पढ़ लिख कर विद्वान चतुर और नीतिज्ञ हो गया । विश्वभूति ने दोनों की शादी कर दी । कमठ की वरुणा नाम की पत्नी थी और मरुभूति की सुन्दर रूपवती वसुन्धरा नाम की पत्नी थी । एक दिन विश्वभूति मंत्री आईना के सामने खड़ा चहरा देख रहे थे उन्हें मस्तक पर एक सफेद बाल दिख गया । वे सोचने लगे कि यह मृत्यु का सन्देश वाहक है अतः मुझे अपना आत्मकल्याण कर लेना चाहिए । उसने अपने दोनों पुत्रों को राजा अरविन्द को सौंप कर जिनदीक्षा ले ली । मुनि बन कर तपस्या करने लगा । राजा अरविन्द ने मरुभूति को अपना मंत्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बना लिया । निशकंटक राज्य चल रहा था । एक बार राजा अरविन्द ने अपनी राज्य की सीमा बढ़ाने के लिए मंत्री मरुभूति को साथ लेकर राजा वज्रवीर्य मण्डलेश्वर पर चढ़ाई कर दी । इधर कमठ ने देखा राज सिंहासन खाली है । मंत्री भी नहीं है । सो अपने को राजा मान कर मनमानी करने लगा । लोगों को डराने धमकाने लगा । बहुत आतंक फैलाने लगा । एक दिन उसने मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा को आभूषणों से युक्त सुन्दर वस्त्रों में देखा तो मोहित हो गया । कामविथा में विह्वल होकर तड़पने लगा । उसे प्राप्त करने का उपक्रम करने लगा । उसके बिना बड़ा दुखी और उदास होकर वह अपने बगीचे के लताग्रह में पड़ा था कि उसका मित्र कलहंस वहा आ गया । उसने कमठ की ऐसी दशा देख कर पूछा मित्र उदास और दुखी क्यों हो ? कमठ ने अपने मन की सारी बात मित्र को बता दी और कहा कि तुम्हारे बिना मेरा काम और कौन कर सकता है ? तुम किसी भी तरह से बने मेरी सहायता करो । जब से मैंने मरुभूति की पत्नी को देखा मुझे चैन नहीं है । जब तक मैं उसे प्राप्त न कर लूं मेरा जीवन निष्फल है ।

पहले तो मित्र ने समझाने की कोशिश की उसने कहा कि यह काम महा निंदनीय है बहू और बेटी समान होती है । जग हसाई होगी । राजा दंड देगा । ऐसा अशोभनीय काम करना उचित नहीं हैं । पर कमठ ने एक न मानी उसने कहा कि मित्र अगर तुम मेरा जीवन चाहते हो तो किसी बहाने से उसे इस लताग्रह तक ले आओ । कलहंस मरुभूति के महल में गया और वसुन्धरा से बोला कि कमठ बहुत तड़फ रहे है बीमार है बुखार है बगीचे के लताग्रह में पड़े आपको याद कर रहे हैं । उन्हें जाकर सम्हाल लो । वसुन्धरा बीमारी की बात सुनकर शीघ्र ही लताग्रह में पहुँची । हाल चाल पूछने लगी । तभी पापी कमठने उसे अपनी बाहों में जकड़ लिया । वह चिल्लाती रही । मगर कमठने अपनी हवस पूरी करली । यह समाचार नगर में अग्नि की तरह फैल गया । कुछ दिन बाद राजा अरविन्द एवं मंत्री मरुभूति अपनी विजय पताका फैलाते हुए अपने नगर वापिस लौटे । नगर में कमठ के अत्याचार की चर्चा हो रही थी । राजा ने सभी समाचारों को सुना और क्रोधित हो उसने मरुभूति को बुलाया । उसे कमठ के अत्याचारों से अवगत कराया और पूछा बताओ इसे क्या दंड दिया जाय । भातृ स्नेहपूरित हृदय से मरुभूति ने कहा: राजन कमठ का यह पहला अपराध है अतः उसे क्षमा कर देना चाहिए । नीतिकारों का कहना है कि प्रथम अपराध क्षमतव्य होता है । राजा ने कहा मंत्रीजी अगर अपराधियों को बिना दंड दिये छोड़ दिया जाय तो वे और अनेक अपराध करेंगे । इसलिए मैं अपराधी को दंड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्य दूंगा। ताकि कभी दुबारा अपराध न करें। जानते हो अन्याई दया के पात्र नहीं होते। मंत्री चुप रहे। राजा ने कमठ को बुलाया। उसका सिर मुंडवा कर काला मुंह किया। उसे गधे पर बैठाकर ढोल नगाड़ों के साथ सारे नगर में घुमाया और राज्य सीमा के बाहर निकल जाने का आदेश दिया। कमठ नीचा मुख किए लज्जित होकर राज्य सीमा के बाहर एक तपस्वियों का आश्रम था उसमें पहुँचा। और दुखी होकर वहाँ के मठाधीश से प्रार्थना कर तपस्वी बन घोर तपस्या करने लगा। वहां पर कोई जटा रखाये, पंचाग्नि तपते थे। कोई खड़े खड़े घंटों तप करते थे। कमठ भी भस्म रमाये एक बहुत बड़ी शिला को हाथों पर उठाये घंटों खड़ा रहकर तप करने लगा।

मरुभूति ने सुना कि मेरा बड़ा भाई कमठ भूताचल पर्वत पर घोर तप कर रहा है। बड़ा दुखी है। उसे देखने के लिए एवं मनाने के लिए भूताचल पर्वत पर जाने का विचार किया और राजा से आज्ञा लेकर वह अकेला ही पर्वत पर गया। भाई को एक बड़ी शिला हाथों पर उठाये तप करते देखा तो विनम्र स्वर में कहा : भाई क्षमा कर देना। मैंने तो राजा से दंड देने को बहुत मना किया। पर राजा माना ही नहीं। इसमें मेरा क्या कसूर है? ऐसा कहकर पैर छूने के लिए जैसे ही वह नीचे झुका कमठ ने वह बड़ी शिला उसके मस्तक पर पटक दी और क्रोधावेश में पैर पटक कर दूर खड़ा हो गया। शिला के गिरते ही मरुभूति के प्राण पखेरु उड़ गये। वह वहीं मर गया। ये समाचार जब तापसियों ने सुने और उसकी लाश पड़ी वहां देखी तो मठाधीश ने उसे आश्रम से निकाल दिया। कहा यह पापी है। हिंसक है। हत्यारा है। निकालो इसको यहां से। कमठ वहां से भागकर भीलों के यहां रहकर चोरी आदि करके अपना काम चलाने लगा। वह एक नम्बर का चोर बन गया।

उधर जब मंत्री मरुभूति बहुत दिनों तक लौट कर नहीं पहुंचे तो राजा अरविन्द बहुत चिंन्तित हुए। एक दिन मुनिराज नगर में आए थे। वे अवधिज्ञानी थे। राजा ने उनसे राज मंत्री के न आने का कारण जानना चाहा। इससे मुनिराज से पूछा। मुनिराज ने सारा हाल राजा को कह दिया। जिसे सुनकर राजा को बहुत दुख हुआ।

मरुभूति का जीव मरकर कुब्ज देश के सल्लकी बन में हस्ती हुआ। उसका नाम बज्रघोष था। वह सचमुच ही बज्र के समान कठोर। डीलडाल में बहुत भारी था। उधर कमठ की पत्नी वियोग एवं विरह में जलती हुई प्राण त्यागकर इसी बन में हस्तिनी हुई। बज्रघोष के साथ रमती रहती थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा अधिकार

एक दिन राजा अरविन्द अपने महल की छत पर खड़े होकर बादलों को देख रहे थे। एक बादल के बहुत बड़े टुकड़े ने एक महल का दृश्य बनाया। राजा को वह महल बहुत अच्छा लगा। राजा ने सोचा मैं एक ऐसा ही महल बनाऊंगा। उसमें एक मंदिर बनाऊंगा। उसका चित्र खींचने के लिए ज्यों ही कागज पेंसिल उठाई कि एक हवा के झोके ने बादलों का महल बिखेर दिया। राजा को यह देखकर वैराग्य आ गया। उसने सोचा ऐसा ही मानव जीवन है। जो क्षणभंगुर है। बनाते बनाते बिगड़ जाता है। उसने अपने पुत्र को राज दिया और वन जाकर दीक्षा ले ली व अनेक मुनियों के साथ रह कर तपस्या करने लगे। एक बार मुनि अरविन्द मुनि संघ सहित शिखर सम्मेद की वंदना के लिए निकले। संघ में मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका सभी थे। ईर्यापथ से चलते हुए मुनिसंघ इसी सल्लकी बन में पहुंचा। अपने अपने स्थान में ठहर कर सभी अपने अपने काम में लग गये। मुनि ध्यान में आरुढ़ हो गये। तभी वह वज्रघोष हस्ती बड़ी भयानक आवाज करता हुआ, वृक्षों को उखाड़ता हुआ, नष्ट भ्रष्ट करता हुआ संघ की ओर दौड़ा। सारे संघ में खलबली मच गई, कोई इधर भागा, कोई उधर भागा। कोई गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। सारा संघ तितर-बितर हो गया। हस्ती आवाज करता हुआ मुनि अरविन्द की ओर दौड़ा। ज्यों ही नजदीक आया, मुनि की ओर देखने लगा। मुनि के वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह देखकर सहम गया। नीची गरदन करली। मुनिराज ने कहा गजराज पहचान लिया क्या? मैं राजा अरविन्द था और तुम मेरे मंत्री मरुभूति थे। तुमनें मेरी बात नहीं मानी और कमठ से मिलने चले गये थे। उसने तुम पर शिला पटक दी। तुम मृत्यु को प्राप्त हुए। लेकिन संक्लेश परिणामों से मरण कर इस वन में पशु पर्याय पाकर हस्ती हुए हो। अब भी पाप कर रहे हो। मनुष्य से पशु बन गये अब और कहां जाने का विचार है? क्या नरक के दुखों से भय नहीं लगता ? अगर ऐसा ही पाप करते जीवन बीतेगा तो निश्चित नरक जाओगे। मुनिराज ने धर्मोपदेश दिया। अणुव्रत पालन करने का निर्देश दिया। गजराज ने अणुव्रत धारण कर लिए। अपने किए पर पश्चाताप करने लगा। अष्टमी, चतुर्दशी उपवास करता। पारणे के दिन सूखे पत्ते खाकर जीवाणु रहित जल पीकर जीवन बिताने लगा। अब वह कमजोर हो गया, दिन रात चिंतन करता रहता था।

उसका शरीर शिथिल हो गया था। एकदिन वह पानी पीने के लिए किसी नदी पर गया उसमें कर्दम था, ज्यों ही वह पानी में उतरा उसका पैर कीचड़ में फंस गया। उसने बहुत जोर लगाया लेकिन निकल नहीं पाया। उसने सोचा कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब निकलना मुश्किल है । अतः जन्म-भर के लिए अन्न-जल का त्याग कर संन्यास ले लिया । समाधिपूर्वक सन्तोष के साथ दिन बिताने लगा । इसी वन में कमठ का जीव था । जो भीलों के साथ रहकर चोरी करता था । आयु क्षीण होने पर मरकर कुर्कुट नाम का सर्प हुआ । हाथी को फँसा देख कर पूर्व जन्म का वैर विचार कर हाथी को डस लिया । हाथी ने शान्तिपूर्वक मरण कर, बारहवें स्वर्ग में शशिप्रभ नाम का देव हुआ । अन्तर्मुहूर्त में वह अवधिज्ञान से युक्त पूर्ण युवा हो गया । उसने अवधिज्ञान से सारा पूर्व भवजान लिया कि व्रतों के प्रभाव से हस्ती से मैं देव हुआ हूँ । सोलह सागर की आयु थी । वैक्रियक शरीर था । अनेक देवांगनाएं थी । उन सभी को साथ लेकर सबसे पहले वह अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजन वंदना के लिए गया । नंदीश्वर द्वीपों की वंदना की । नन्दन वनों में क्रीड़ा करता हुआ स्वर्गीय सुख भोगता रहा ।

तीसरा अधिकार

इधर वह कुटकुट सर्प आयुपूर्ण कर पांचवें नरक पहुँचा और नारकीय यातनाएँ भोगने लगा । छेदन भेदन भूख प्यास सर्दी की वेदना आदि प्राकृतिक दुःख नरकों में थे । वह शशिप्रभ देव नाना सुखों को भोगता हुआ अपनी आयु पूर्ण होने पर वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र में पुस्कलावासी देश के लोकोत्तम नगर के राजा विद्युतगति और रानी विद्युतमाला के यहां अग्निवेग नाम का पुत्र हुआ । अग्निवेग स्वभाव से ही सौम्य, सम्पूर्ण शुभलक्षणों से युक्त बड़ा बुद्धिमान था । धीरे धीरे पुत्र बड़ा हुआ । यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ । एक दिन उसने समाधिगुप्त मुनिराज के दर्शन किए । उनसे धर्मश्रवण किया । मुनिराजने कहा कि संयम से ही मानव जीवन की सफलता है । मानव जन्म संयम के लिए ही होता है । यह संयम अन्य गतियों में संभव नहीं है । अतः अग्निवेग को वैराग्य आ गया और वह मुनिराज से दीक्षा ग्रहण कर तपस्या करने लगा । ये मुनिराज आत्मा को निर्मल बनाने के लिए नाना तपों को तपते वनों की गुफा में बैठ आत्मचिंतन करते । एक बार एक पर्वत की गुफा में बैठकर ध्यान कर रहे थे कि इसी गुफा में वह कमठ का जीव जो पहले कुटकुट सर्प हुआ, फिर पाचवें नरक गया, वहां से निकल कर इसी गुफा में अजगर सर्प हुआ । मुनिराज को देखते ही पूर्व वैर के अनुसार मुनि को निगल लिया । अजगर द्वारा किये गये घोर उपसर्ग को शान्तिपूर्वक सहन करते हुए समाधिपूर्वक मरण कर उन मुनि का जीव अच्युत स्वर्ग के पुष्कर विमान में विद्युतप्रभ नाम का देव हुआ । अणिमा महिमा आदि अष्ट ऋद्धियों के धारक इस देव ने २२ सागर की आयु पाई । नाना प्रकार के दिव्य सुखों को भोगता हुआ यह विद्युतप्रभ देव अकृत्रिम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनालयों की वंदना करता । अपनी इन्द्राणी के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ा करता हुआ काल व्यतीत करने लगा । आयु पूर्ण होने पर यह देव अच्युत स्वर्ग से मरण कर जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह के अश्वपुर नगर के वज्रवीर्य राजा एवं विजयारानी की कुक्षि से वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ । जो बड़ा शक्तिशाली सुयोग्य पुत्र था । जब वह युवा हो गया तो राजा वज्रवीर्यने उसे अपना राजपाट सम्हला दिया और स्वयं मुनि बन कर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हुए । एक दिन राजा वज्रनाभि की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । जिसकी एक हजार देव सेवा करते थे । उस चक्ररत्न को प्राप्त कर राजा वज्रनाभि ने अनेक राजाओं को जीत कर चक्रवर्तिपद प्राप्त किया । अनेक कन्याओं के साथ ब्याह किया । उनके छयानवे हजार नारियां थीं । नवनिधि चौदह रत्नों का स्वामी था । छह खंडो का अधिपति था । चौरासी लाख हाथी, अठारह करोड़ घोड़े, इत्यादि वैभव से सम्पन्न चक्रवर्ति वज्रनाभि अनेक वर्षों तक राज्य करता रहा । लेकिन हमेशा धर्म कार्य में तत्पर रहता था । इनके बारे में लिखा है कि

बीजराख फल भोगवै ज्यों किसान जग माहिं ।
त्यों चक्री नृप सुख करे धर्म विसारे नाहिं ।।

इस प्रकार राज्य करते हुए कितना काल व्यतीत हो गया है इसका उसे ध्यान नहीं था । एक बार इसी नगरी में क्षेमंकर मुनिराज पधारे । उनकी वंदना अर्चना हेतु नगर निवासी सभी के साथ राजा वज्रनाभि अपने कटक के साथ गये । उनकी पूजन अर्चन के बाद सभा में बैठ गये । मुनिराज ने संसार के दु:खों का वर्णन करते हुए कहा कि यह मोही प्राणी अनंतकाल से जन्म मरण करता हुआ संसार में भटक रहा है और दुख को ही सुख मान रहा है । चक्रवर्ति राजा वज्रनाभि को वैराग्य आ गया । उसने समस्त राजपाट छोड़ मुनिदीक्षा ले ली । एक दिन विहार करते हुए मुनि वज्रनाभि एक भयंकर जंगल में पहुँचकर ध्यान आरूढ़ थे । तभी वह कमठ का जीव जो अजगर सर्प हुआ था, मुनिराज को निगलकर महान पाप बंध कर, छठवें नरक में नारकी हुआ । वहां के दुखों को भोगता हुआ आयु पूर्ण कर कुरंग नाम का भील हुआ । शिकार की खोज में इसी जंगल में घूम रहा था । जहां उसने मुनिराज को बैठा देखा । धनुषबाण लिये यहां आ पहुचा और उसने मुनिपर धनुषबाण छोड़ दिया । मुनिराज इस उपसर्ग को शान्तिपूर्वक सहन करते हुए समाधि पूर्वक मरण कर मध्यम ग्रैवेयिक में अहमिन्द्र हुए । इनकी सत्ताईस सागर की आयु केवल धर्मचर्चा करते हुए व्यतीत हुई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथा अधिकार

वहाँ से चय कर जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशल देश की अयोध्यानगरी के राजा वज्रबाहु और उनकी प्रभाकरी रानी की कुक्षि से आनंदकुमार नाम का पुत्र हुआ। आनंदकुमार यथानाम तथागुण को चरितार्थ कर रहा था। सर्वगुण सम्पन्न सबको आनंद देने वाला पुत्र धीरे धीरे बढ़ता हुआ नवयौवन को प्राप्त हुआ तब राजा ने अपना राज्यभार बेटे आनंद को सौंप कर आप बन में जाकर दीक्षा ले ली और तप करने लगे। आनंदकुमार ने अपने बलपौरुष से अनके राजाओं को अपने अधीनस्थ कर आप महा मंडलेश्वर बन गया। जिसे चार हजार राजा अपना राजा मानते उसकी आज्ञा शिरोधार्य करते थे। इस तरह राज्य करते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गये। एक बार राजमंत्री स्वामिहित ने उसे बड़ी हितकारी बात कही, हे राजन यह वसन्तऋतु ऋतुराज कहलाती है इसमें देवलोग के देव बड़े उत्साह के साथ नंदीश्वर द्वीप की वंदना को जाते हैं। और यहां के नगर निवासी भी जिन मंदिर में बड़ा महोत्सव करके अष्टाह्निक महा पूजन करते हैं और महान पुण्य लाभ लेते हैं। यह बात सुनकर राजाने भी वसन्तोत्सव मनाने के लिए पूजन सामग्री लेकर बड़े ठाटबाट के साथ जिन मंदिर पहुँच कर बड़े भक्तिभाव से पूजन की। उसके मन में बार-बार एक शंका उठती थी। वहीं पर विपुलमति मुनिराज विराजमान थे। राजाने अपनी शंका का समाधान मुनिराज से चाहा। राजाने पूछा कि हे स्वामिन् बताइये कि मूर्तियां तो पाषाण व धातुकी अचेतन होती हैं। वे पूजक को पुण्य का फल कैसे देती हैं ? मुनिराज ने कहा राजन् मूर्ति तो नहीं देती हैं पर पूजक अपने परिणामों से पा जाता है। मूर्ति को देखकर उसके जो शुभ भाव बनते हैं वे पुण्य के कारण बनते हैं। कारण पाकर जीव के शुभ-अशुभ भाव होते हैं। जैसे स्फटिक मणि के पीछे जिस रंग का फूल रख देने पर वह मणि उसी रंग की दिखने लगती है। उसी प्रकार आपके जैसे भाव होंगे वैसा ही फल मिलेगा। वीतराग की मूर्ति देख कर वीतरागता के भाव बनना स्वाभाविक है। इस प्रकार मुनिराज ने अनके दृष्टान्तों से समझाया। एक विशेष बात यह बताई कि सूर्यमंडल में अकृत्रिम चैत्यालय है। उसमें जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा है। चक्रवर्ती प्रातःकाल और सायंकाल उसके दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। यह बात सुनकर राजा ने भी प्रतिदिन सूर्य में स्थित प्रतिमा के दर्शन करने का कार्य प्रारंभ कर दिया। इस बात को देखकर नगर निवासी भी प्रतिदिन सूर्य को नमस्कार करने लगे। और आज तक यह प्रथा चली आ रही है। राजा ने ऐसा ही एक सूर्य के आकार का मंदिर बनवाया, प्रतिमा पधराई। उसे सूर्यमंदिर नाम दिया। इस प्रकार अनेक वर्षों तक राज्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता हुआ आनंद से काल व्यतीत होता जा रहा था । एक दिन उसने अपने शिर में एक सफेद बाल को देखा । तो उसे वैराग्य हो गया । वह सोचने लगा कि अब आयु कम रह गई है । सफेदबाल बुढ़ापे की निशानी है और बुढ़ापा मृत्यु का मित्र है । यह सोचकर राजपाट छोड़ दीक्षा ग्रहण की और तप करने लगे । कुछ समय बाद मुनि आनंद विहार करते हुए क्षीरवन में पहुंचे और शिला पर बैठ कर ध्यान करने लगे । वह कमठ का जीव कुरंग भील की पर्याय पूर्ण कर मुनि हत्या के पाप से सातवें नरक में नारकी हुआ । वहां के दुख भोग कर इसी क्षीरवन में सिंह की पर्याय में आया । आज मुनि आनंद को देखते ही उसे जाति स्मरण हो गया । उसने पूर्व भव का वैरी समझ कर मुनि को अपनी विकाराल दाढ़ों और नखों से विदीर्ण कर मार डाला । मुनि ने उपसर्ग सहन करते शान्ति पूर्वक प्राणों को छोड़ कर आनत स्वर्ग में इन्द्र पद प्राप्त किया । वहां के स्वर्ग निवासी देवों ने उनका स्वागत किया और उन्हें अपना राजा मानते हुए इन्द्रासन पर अधिष्ठित कर दिया ।

पाँचवा अधिकार

अब इन्द्र अपनी इन्द्राणियों के साथ अकृत्रिम जिनालयों की वंदना करता । जिनेन्द्र पंच कल्याणकों में पहुंच धर्मश्रवण करता । बीस सागर की आयु सुखपूर्वक पूर्ण करते हुए जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में भरतक्षेत्र के मध्य वाराणसी नगरी है । इसके राजा विश्वसेन और रानी वामादेवी थी । राजा नीतिनिपुण सर्वगुण-सम्पन्न था । एक दिन उसकी रानी वामादेवी ने रात्रि के पिछले पल बड़े सुन्दर सोलह स्वप्न देखे । प्रातः उठकर अपने पति से उनका फल पूछा । राजाने कहा देवी बड़े सुन्दर स्वप्न हैं । तुम बड़ी सौभाग्यशाली हो । तुम्हारी कूंख से तीर्थंकर होने वाला एक बालक उत्पन्न होगा । जो तीनों लोकों का राजा होगा । लोगों को धर्म-मार्ग बताने वाला मोक्षगामी होगा । यह सुनकर वामादेवी खुशी में डूब गई और आनंदित हो सुखपूर्वक दिन बिताने लगी । प्रथम स्वर्ग के इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी कि वह जाकर नगरी की सुन्दर रचना करे । माता की सेवा के लिए छप्पन कुमारी भेज दीं । पन्द्रह माह तक तीन समय रत्नों की वर्षा उस नगरी में होने लगी । आनत स्वर्ग का इन्द्र अपनी आयु पूर्ण कर वामादेवी के गर्भ में वैसाख कृष्ण द्वितीय के दिन अवतरित हुआ । नव मास माँ के उदर में रहे । उस समय मां की सेवा में षट कुमारिकाएं तत्पर रहती थीं । सदा मां को प्रसन्न रखती । उनसे बड़े सुन्दर और अटपटे प्रश्न पूछतीं । मां उनका उत्तर देती थीं । नौ मास पूर्ण होते ही पौष कृष्ण एकादशी के दिन एक पुत्र ने जन्म लिया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठा अधिकार

इन्द्रों के आसन कम्पायमान हुए। देवों के यहां घंटा अपने आप बजने लगे। किसी के यहाँ शंख बजने लगे। नगाड़े बजने लगे। तब अवधिज्ञान से जाना कि तीर्थंकर प्रभु का जन्म हो गया है। प्रथम इन्द्र इन्द्राणी सहित तथा अन्य देव समूह के साथ वाराणसी नगरी में ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर आये। सबसे पहले नगर की तीन प्रदिक्षणा दीं। पश्चात् इन्द्राणी को प्रसूतिगृह भेजकर बालक को उठवाया। भगवान का बड़ा सुन्दर रूप था। वे नीलमणि के समान सुन्दर लग रहे थे। इन्द्र ने एक हजार नेत्रों से उन्हें निहारा और ऐरावत हाथी पर बिराजमान करके सुमेरु पर्वत पर, पांडुकवन में निर्मित पांडुकशिला पर, रत्नों के सिंहासन पर बिराजमान कर, क्षीरसागर के जल से एक हजार आठ कलशों द्वारा उनका अभिषेक किया। इन्द्राणी ने उस बालक का शृंगार किया। स्वर्गीय वस्त्र-आभूषण पहनाए और विनम्रता से उनकी स्तुति की। पश्चात् उनका नाम पार्श्वनाथ रखा। वहां से वापिस आकर पार्श्वकुमार को उनके माता पिता को सौंप इन्द्र अपने स्थान पर चला गया।

सातवाँ अधिकार

पार्श्वकुमार दोज के चन्द्रमा की तरह दिनोंदिन बढ़ने लगे। जन्म से ही इन्हें तीन ज्ञान थे। मति, श्रुत और अवधिज्ञान। जब कुमार आठ वर्ष के हुए तो उन्होनें अणुव्रत धारण कर लिए। धीरे धीरे कुमार यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। तब पिता ने उनके ब्याह का प्रस्ताव कुमार के समक्ष रखा। पार्श्वकुमार ने मना कर दिया। पिताने समझाने की कोशिश की और कहा बेटा बड़े बड़े पूर्व के महापुरुषों ने विवाह किया। वंश चलाने के लिए संतान उत्पन्न की। जैसे ऋषभ देव आदि उनके भरत, बाहुबलि आदि सौ पुत्र थे। पार्श्वकुमार ने कहा पिताजी जरा इनकी आयु भी तो देखो एक कोटी वर्ष पूर्व आयु थी। मेरी आयु कुल सौ वर्ष की। जिसमें सौलह वर्ष तो बचपन में ही निकल गये। अब शेष आयु बची ही कितनी सी। अतः मैं ब्याह के झंझट में नहीं पड़ना चाहता। पिता चुप रह गये। एक दिन पार्श्वकुमार अपने साथियों के साथ हाथी पर बैठ कर वन विहार को निकले। रास्ते में उन्हें एक तापसियों का आश्रम दिखा। वे उसे देखने हाथी से उतर कर आश्रम पहुँचे। वहां क्या देखते हैं कि एक तपस्वी पंच अग्नि जलाकर तप कर रहा है। उन्होंने अवधिज्ञान से जानकर कहा : रे भाई क्यों जीवों की विराधना कर रहे हो? तुम क्यों ऐसा अज्ञान तप कर रहे हो, इस लकड़ी में अन्दर एक नाग-नागनी का जोड़ा जल रहा है। तापस क्रोध में लाल नेत्र करके बोला; हमारे तप को अज्ञान तप कहते हो। तुम्हीं अकेले ज्ञानी हो?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहां है सर्प का जोड़ा ? यूं कहकर ज्योंही उसने उस लकड़ी को फाड़ा उसमें से अधजले नाग नागनी का जोड़ा निकला। जो मरणासन्न था। पार्श्वकुमार ने उस नाग के जोड़े को णमोकार मंत्र सुनाया। धर्म का उपदेश दिया। उन दोनों नाग-नागनी ने शान्तिपूर्वक प्राण त्याग दिए और स्वर्ग में धरणेन्द्र-पद्मावती हुए। पार्श्वकुमार घर वापिस आकर विचारों में खो गये। इन्हें संसार की क्षणभंगुरता साफ नजर आने लगी और उनके कदम वैराग्य की और बढ़ने लगे। वे बारह भावनाओं का चिंतन करने लगे। उसी समय लौकान्तिक देव महल में आकर पार्श्वकुमार की भावनाओं का अनुमोदन करते हुए कहने लगे: धन्य है धन्य है प्रभु ! आप का यह सुन्दर विचार समयानुकूल है। आपने यह ठीक ही सोचा है। गृह त्याग कर ही सच्चा सुख खोजा जा सकता है। उसी समय प्रथम इन्द्र स्वर्ग से एक सुन्दर पालकी लाये। चारों स्वर्गों के इन्द्र एकत्र होकर पार्श्वनाथ का दीक्षाकल्याणक मनाने की तैयारी करने लगे। पार्श्वकुमार पालकी में आरूढ़ हुए। सबसे पहले नगर-निवासियों, राजा-महाराजों ने पालकी अपने कन्धों पर उठाई। कुछ दूर चलने पर देवों ने पालकी ले ली और अश्ववन की ओर ले चले। बन में पहुंच कर पार्श्वकुमार ने पालकी से उतर कर अपने राजकीय वस्त्राभूषण उतार डाले। केशलुंच किए। इन्द्रों ने उनकी पूजन की। पार्श्वनाथ वट-वृक्ष के नीचे बैठ कर ध्यान में लीन हो गये।

आठवाँ अधिकार

कुछ समय बाद मुनि पार्श्वनाथ वहां से विहार करके गुजर खेटपुर नगर पहुंचे। वहां के राजा ब्रह्मदत्तने मुनिराज को आहारदान दिया। पश्चात् मुनिराज आगे को विहार कर गये। एक वन में पत्थर की एक स्वच्छ शिला पर बैठ कर ध्यान करने लगे। इसी समय वह तापिसी जो अज्ञान तप कर रहा था, आयु पूर्ण कर स्वर्ग में संवर नाम का देव हुआ। एक दिन वह संवर देव अपने विमान में बैठा हुआ वहां से निकला जहां पार्श्वनाथ शिला पर ध्यान कर रहे थे। उसका विमान ठीक उनके उपर जा रहा था रुक गया। उसने सोचा क्या बात है। यकायक विमान क्यों रुक गया। नीचे झांक कर देखा कि नीचे कोई तपस्वी बैठा है। उसने ही मेरे विमान को रोक दिया है। ऐसा नियम है कि तद्भव मोक्षगामी के ऊपर से लांघ कर कोई निकल नहीं सकता। पर उस देव को क्या मालूम ? वह क्रोधाभिभूत होकर भयानक उपसर्ग करने लगा। अपनी माया से उसने पत्थर-कंकड़ बरसाये। आंधी तूफान चलाया। घनघोर वर्षा होने लगी। यहां तक कि पानी छाती से ऊपर तक बहने लगा। उसी समय वे नाग-नागनी जो धरणेन्द्र पद्मावती हुए थे, तत्काल वहाँ आये और जिस शिला पर पार्श्वनाथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यानारूढ़ थे उसे धरणेन्द्र ने अपने शिर पर उठा लिया । पद्मावतीने उन्हें नमस्कार किया और धरणेन्द्रने उनकी रक्षाके भावसे अपना फण फैलाकर छत्ता तान दिया, पर भगवान ध्यान में डूबते गये और चार घातियां कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया । उस संवरदेव ने यह हाल देखा तो भागा जी छोड़ कर । भगवान को केवलज्ञान होते ही सारे उपसर्ग समाप्त हो गये ।

नौवा अधिकार

इन्द्रों के आसन कम्पायमान हुए । उन्होंने अवधिज्ञान से जाना और जिस दिशा में भगवान विराजमान थे सात पैर चल कर उन्हें परोक्ष नमस्कार किया । तत्क्षण कुबेर को समोशरण की रचना के लिए आदेश दिया । उसने समोशरण की बड़ी सुन्दर रचना की । जिसमें बारह सभाएँ थी । गंधकुटी बीच में थी । जिस पर रत्नों का सिंहासन था । तीन छत्र, चौसठ चमर आदि अष्ट प्रातिहार्य उपलब्ध थे । मुनि, आर्यिका, देव, देवियां, नर, नारियां और पशु एक साथ बैठ कर भगवान की दिव्यध्वनि सुन, धर्म के स्वरूप को समझ रहे थे । भगवान का सात तत्त्व, नव पदार्थ, षट् द्रव्य, पंचास्तिकाय आदि जैन सिद्धान्त अनेकान्त रूप से तत्व के निर्णय पर सारगर्भित उपदेश हुआ । कई वर्षों तक उपदेश देते हुए जीवों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया । पश्चात् शिखर सम्मेद पर्वत पर पहुंच कर योगनिरोध करते हुए श्रावण शुक्ल सप्तमी को निर्वाण प्राप्त किया । इनके जीवन की विशेषता यह रही कि १० भव तक एक तरफा वैर चलता रहा । कमठ दसभव तक वैर भंजाता रहा पर पार्श्वनाथ ने किसी भी भव में अपनी ओर से कमठ के जीव को सताने का भाव नहीं बनाया ।

- पं. कमलकुमार शास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय

ऐसो श्रावक कुल तुम पाय, वृथा क्यों खोवत हो ।

कठिन कठिनकर नरभव पाई, तुम लेखी आसान ।
धर्म विसारि विषयमें राचौ, मानी न गुरुकी आन ।।१।।

चक्री एक मतंगज पायो, तापर ईंधन ढोयो ।
बिना विवेक बिना मतिहीको, पाय सुधा पग धोयो ।।२।।

काहू शठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो ताय ।
वायस देखि उदधिमें फैंक्यो, फिर पीछे पछताय ।।३।।

सात विसन आठों मद त्यागो, करुना चित्त विचारो ।
तीन रतन हिरदैमें धारो, आवागमन निवारो ।।४।।

'भूधरदास' कहत भविजनसों, चेतन अब तो सम्हारो ।
प्रभुको नाम तरन तारन जपि, कर्मफन्द निरवारो ।।५।।

- भूधरदास

सन्मति ट्रस्ट, मुम्बई ०२२-२४८१२८२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org